अन्तराल

यह श्यामा की कहानी है।
उस श्यामा की, जो जीवन की
कठोर सचाइयों से गुजरते हुए
सम्बन्धों के विचित्र मोड़ों पर
रुकती चलती है।
वह देव की विधवा है,
पर कुछ आकांक्षाएं हैं, जो उसे
कुमार से जोड़ती हैं,
फिर भी उसमें रूप भिन्नता है।
वह उधर के रास्ते की तरफ
दौड़ती भी है, लेकिन किन्हीं
मानसिक सरोकारों के
कारण लौटती भी है।
यह लौटना उसकी नियति है,
जिसे उसने अपने लिए अनिवार्य मान लिया है।
'अन्तराल' सही मायनों में
श्यामा के माध्यम से एक ऐसी
स्त्री की कहानी है, जो विचित्र
तो है, पर यथार्थ से परिपूर्ण भी है।
प्रख्यात कथाकार मोहन राकेश
[illegible]
चना है यह।

□

अन्तराल





हिन्द पॉकेट बुक्स

अन्तराल-१

एयर-कंडीशनिंग प्लांट के रुक जाने से सारी इमारत चलते-चलते ठहर गई।

कुमार ने घड़ी में वक्त देखा और सामने के कागजों का पुलंदा उठाकर ट्रे में डाल दिया। शरीर और मन की थकान गवाह थी कि काम का दिन पूरा हो चुका था, हालांकि दिन का काम अभी बहुत बाकी था। कोई दिन ऐसा नहीं आता था, जिस दिन दिन के सब काम पूरे हो जाएं। हर आज आने वाले कल के लिए काम की कुछ-न-कुछ विरासत छोड़ जाता था।

कुर्सी से उठा, तो रीढ़ की हड्डी रोज की तरह अकड़ गई थी। कनपटियां और पपोटे दर्द कर रहे थे। सिर पर जैसे मोटे कागज का खोल चढ़ा था। उसने कई बार पलकें झपकीं कि शायद इस कसरत से ही आंखों में कुछ ताजगी लौट आए, फिर जंग-खाई मशीन-सा केबिन से बाहर निकल आया।

बाहर आकर फिर एक बार उसने घड़ी में देख लिया। पांच सत्रह। श्यामा से साढ़े पांच बजे मिलने की बात की थी। टी सेंटर में। वह जगह उसने जान-बूझकर चुनी थी। वहां ज्यादा लोग नहीं आते थे। भरी शाम में भी कई बार एक पूरा कोना खाली मिल जाता था। कितनी ही बार उस हाल में उसने बिलकुल अकेले बैठकर चाय पी थी। जब भी इर्द-गिर्द से अपने को काट लेने का मन होता था, उस जगह चला जाता था। चाय पीकर फिल्म देखने के बहाने काफी-काफी देर वहां के आडिटोरियम में बैठा रहता था। जब किन्हीं लोगों से मिलना होता था, तो उन्हें वह दूसरी-दूसरी जगहों पर बुलाता था। आज पहली बार थी, जब उसने किसी से टी सेंटर में मिलने की बात तय की थी और पहली ही बार उसका मन उस जगह के साथ वक्त की पाबन्दी की बात जोड़ रहा था।

'रात को ठीक से सोए नहीं क्या ?' नीलकांत के होंठ उतना नहीं मुसकराते थे, जितना उसकी आंखें। साथ वह रहस्यपूर्ण ढंग से होंठों पर जवान फेरता जाता था। 'आंखें काफी सुर्ख लग रही हैं।'

'तब तो तुमने नहीं कहा जब मेरे पास केबिन में बैठे थे ?'

'केबिन की रोशनी में आंखों के रंग का पता ही नहीं चलता। वहां तो सभी रंग एक-से नजर आते हैं।'

नीलकांत ने विदा लेने के लिए हाथ आगे बढ़ा दिया था। कुमार दो उंगलियां उसके हाथ से छुआकर आगे चल दिया। नीलकांत से वह ठीक से हाथ कभी नहीं मिलाता था, क्योंकि वह आदमी अपना हाथ मुरदा-सा दूसरे के हाथ में दे देता था, जिसे पकड़ने से हिलाकर छोड़ने तक की पूरी कोशिश दूसरे को ही करनी होती थी और हाथ मिलाने के काफी देर बाद तक एक छिपकली को छू लेने की-सी बेचैनी महसूस होती रहती थी।

नीचे पहुंचने तक पांच बाईस हो गए थे। यह सोचकर कि इस वक्त टैक्सी आसानी से नहीं मिलेगी, टी सेंटर तक पैदल जाना ही बेहतर होगा, वह जल्दी-जल्दी कारिडोर पार करने लगा।



बाहर फुटपाथ पर आकर कुमार को लगा, जैसे फ्लोरा फाउंटेन की जगह वह किसी और ही चौराहे पर निकल आया हो।

शाम शाम होती है और उसका अपना एक रंग; एक व्यक्तित्व होता है, यह बात इन कुछ सालों में भूलती-सी जा रही थी। अनुभव के सीमांत पर समय के दो नाम रह गए थे— दिन और रात। और दो ही रूप— केबिन के ट्यूब की रोशनी और सड़क के हंडों की रोशनी। दोनों के बीच का अन्तराल एक ऐसा झुटपुटा था, जो सिर्फ उन्हें आपस में जोड़ता था। घर और दफ्तर के बीच इलेक्ट्रिक ट्रेन के सफर की तरह। सामने सड़क पर फैली एक सुर्ख बादल की छाया, यह एक बेगाना-सा अनुभव था। उस रंगत में घिरे तेज ट्रैफिक के जोखिम में से होकर उसने फ्लोरा की मूर्ति वाले घेरे को पार किया और फिर एक बार उसी जोखिम में से गुजरकर तारघर के फुटपाथ पर आ गया, पर उतनी ही देर में आस-पास का रंग पहले जैसा नहीं रहा। दायीं तरफ पुरानी किताबों के स्टाल पर एक किताब ने उसका ध्यान खींचा, पर बिना उसे देखने के लिए रुके, भीड़ के जिस बहाव के साथ सड़क पार की थी, उसी के साथ वह आगे बढ़ता गया।

पर मन उसका अपने पैरों के साथ नहीं था। उसके अंदर की जरूरत टी सेंटर पहुंचने से पहले कहीं अकेले बैठने की थी। क्या आज तीन साल बाद श्यामा से मिलने पर वह उससे उस व्यक्ति के रूप में बात कर सकेगा,

बेमतलब हंसी, कि वात किसी तरह आगे निकल जाए, फिर जल्दी से उसने टी सेंटर में मिलने की वात तय कर ली थी। वात करके रिसीवर रखा, तो केविन में पल-भर की खामोशी भी उसे काफी लम्वी लगी। उसे तुरन्त याद नहीं आया कि सामने वैठे लोगों से वह किस विषय में वात कर रहा था, फिर भी वह चेहरे पर सोचता-सा भाव ले आया, जैसे कि वात-चीत का सूत्र उससे छूटा न हो और टेलिफोन की वातचीत उसे महत्त्वपूर्ण प्रसंग में एक अनावश्यक वाधा रही हो।

अचानक उसने पाया कि भीड़ उससे पीछे छूट गई है। क्रासिंग पर वत्ती का लाल रंग देखे वगैर वह सड़क के बीचोंबीच आ पहुंचा था। उसने दौड़कर सड़क पार कर ली। अगर पांच सेकंड की भी देर हो जाती, तो वह तेजी से आती एक शिवरलेट के नीचे दव गया होता। उस गाड़ी का माडल इतना नया था कि उसे देखने और उसके खतरे को समझने के वीच समय का संतुलन वह वड़ी मुश्किल से रख पाया था। सड़क की एक-तिहाई और दो-तिहाई के वीच तेज ट्रैफिक में अपने को घिरे पाकर इस तरह दौड़ना, ऐसा कई वार उसके साथ हो जाता था। जैसे कि दुर्घटना की तरफ वढ़ना और उससे भागना, ये दोनों चीजें एक साथ उसके अस्तित्व में शामिल थीं।

चर्चगेट के पास वह सुरंग में उतरा, तो उसकी टांगें कांप रही थीं। सुरंग की तंग गोलाई और वदली आवाजों का दवाव महसूस करता, वह वहुत आहिस्ता चलकर ऊपर आया। वाहर आते ही उसे ठंडी-सी सिहरन महसूस हुई। जैसे अभी-अभी वह अपने वर्तमान के सुरिक्षत गार में था और अव अचानक वहां से गुजरे कल के चुनौती-भरे मुहाने पर निकल आया था।

चर्चगेट स्टेशन से एक डवल-फास्ट गाड़ी छूटने वाली थी। भीड़ पहले से कहीं तेज चाल पकड़कर उस तरफ वढ़ रही थी। अपने मन के एक हिस्से में वह भी भीड़ के साथ था, पर दूसरा हिस्सा जवरदस्ती उसे भीड़ से अलग करके सामने की तरफ ले जा रहा था। ह्विसल देकर गाड़ी प्लेट-फार्म से सरकने लगी, तो निराशा की एक हलकी लहर उसके शरीर में दौड़ गई। गाड़ी के चलने के साथ ही जैसे एक विकल्प उसके हाथ से छूट गया था। मगर तभी दूसरी अनुभूति उसे संतोष की हुई, क्योंकि उस गाड़ी के चलते-न-चलते दूसरी डवल-फास्ट गाड़ी के संकेत चमकने लगे।

सामने के फुटपाथ पर पहुंचते ही एक छोकरे ने वहां खड़ी टैक्सी का दरवाजा उसके लिए खोल दिया. 'टैक्सी साहव ?' उसने जवाव नहीं दिया तो छोकरे ने मुंह विचकाकर दरवाजा जोर से वन्द कर दिया। वस स्टाप पर लम्वा क्यू था। एक खाली वस तभी आकर रुकी थी। क्यू में खड़े सव

था, 'यह न हो कि मुझे अजनवी लोगों के बीच वैठकर इन्तजार करना पड़े।' तो क्या वह इन्तजार से वचने के लिए जान-वूझकर देर कर रही थी या देर से आकर देखना चाहती थी कि पहले से वहां आकर बैठे हुए उसे उसकी आंखों में कैसा भाव नजर आता है? और जव वह अंदर दाखिल होगी, तो उसे क्या एक वदले हुए चेहरे की तलाश होगी या तीन साल पहले के उसी चेहरे की जिसे आखिरी वार उसने रेलवे प्लेटफार्म पर अपनी ओर वढ़ने के साथ-साथ दूर हटते देखा था।

कुमार ने वैठने के लिए जो जगह चुनी थी, वह दरवाजे के ठीक सामने थी। उसे अफसोस हुआ कि वह खम्भे की ओट में कोने की खाली टेवल की तरफ क्यों नहीं वढ़ गया। इस तरह तो लगता था कि वह वहुत उत्सुकता से इन्तजार कर रहा है और नहीं चाहता कि अंदर आने के वाद श्यामा को उसे ढूंढ़ने में जरा भी कठिनाई हो, पर इससे पहले कि वह वहां से उठकर दूसरी सीट की तरफ जाता, वेटर आर्डर लेने के लिए चला आया। कुहनियां मेज पर टिकाए उसने अकेले आए व्यक्ति की तरह आर्डर दे दिया, 'नीलगिरि चाय। खूब गरम।'

नीलगिरि चाय उसे पसंद नहीं थी, फिर भी ज़ायका वदलने के लिए वह कभी-कभी मंगवा लिया करता था। वेटर चला गया, तो उसने जेव से एक पुरानी चिट्ठी निकाल ली। जाने कव से वह चिट्ठी ऐसे ही जेव में पड़ी थी। उसका जवाव देना जरूरी नहीं था, फिर भी फैसला न कर सकने के कारण वह हर वार देखने के वाद उसे फिर जेव में डाल लेता था। कपड़े वदलने पर जेव के वाकी सामान के साथ वह भी नयी जेव में पहुंच जाती थी। कई वार उसने चाहा था कि एक पंक्ति घसीटकर उसका निपटारा कर दे, या वैसे ही उसे फाड़कर फेंक दे, पर जो चीज एक वार सोचने की लम्वी प्रक्रिया में चली जाती थी, उसका निर्णय कर लेना आसान नहीं रह जाता था। वह चिट्ठी, एक साधारण इनलैंड, भी उसी प्रक्रिया से जुड़कर खस्ता से और खस्ता होती जा रही थी और वह इतना तक नहीं कर पाता था कि उसे जेव से निकालकर डिवटेशन की ट्रे में ही डाल दे।

चिट्ठी को उसने सामने मेज पर फैला लिया। एक अपरिचित व्यक्ति। पंचमढ़ी के अस्पताल में तपेदिक का मरीज। वह अपने परिवार के लिए कुछ मासिक सहायता चाहता था। सहायता कर सकने की स्थिति में वह नहीं था, पर उत्तर न देने की वात से भी उसे मन में कुछ असुविधा महसूस होती थी। चिट्ठी के शब्दों को पढ़ते हुए उस व्यक्ति का कल्पित चेहरा उसके सामने आ जाता था और वह जैसे उसके सिरहाने वैठकर उसे अपनी सफाई देने लगता था।

उसने वेटर को बुलाकर विल अदा कर दिया, फिर भी तव तक वहां से नहीं उठा, जव तक सामने मिनट की सूई ठीक वारह पर नहीं पहुंच गई। वाहर वारिश हो रही है और वह सीधा निकलकर सड़क पर नहीं जा सकता, इसका ध्यान उसे वरामदे में पहुंच जाने के वाद आया।

वारिश की वजह से वरामदे में वहुत-से लोग जमा थे। रोज वम्वई की सड़कों पर नजर आने वाले वही खास तरह के चेहरे। वाहर आने से पहले जो हलकी-सी आशा मन में थी, उन सवसे कुछ अधिक परिचित या अधिक अपरिचित एक चेहरे को वहां देखने की, वह दरवाजा लांघने के साथ ही समाप्त हो गई थी। हवा की नमी और भीड़ की गर्मी एक साथ महसूस करता वह वरामदे के सिरे पर आ गया। आस-पास प्राय: सभी लोगों की नजरें घड़ियों और वरसाती वूंदों के वीच एक-एक मिनट का हिसाव कर रही थीं। उसने एक वार दोनों तरफ के फुटपाथों पर दूर तक देख लिया। कितना अच्छा होता, अगर पी० एन० पन्त उसे इस वक्त कहीं नजर आ जाता! उस आदमी की एक विशेष उपयोगिता थी, जिसका उसे स्वयं पता नहीं था। उसके चेहरे की मुर्दनी, आंखों की कड़ुवाहट और पूरे व्यक्तित्व की पस्ती के सामने दूसरा खामाख्वाह अपने को वेहतर महसूस करने लगता था। कुछ विशेष मन:स्थितियों में पी० एन० पन्त का साथ वह चाहकर ढूंढ़ता था। शहर की टंकी से फ्लश होकर वह आदमी नाली के रास्ते लगातार नीचे को वहा जा रहा था, लेकिन यह जिद उसमें ज्यों-की-त्यों थी कि कोई-न-कोई तरीका जरूर होना चाहिए, जिससे फिर से उसी नाली के रास्ते ऊपर को जाया जा सके। उसकी यह जिद ही कभी-कभी उसमें एक आकर्षण भर देती थी, शायद उसके अपने से वहुत अलग होने के कारण या वहुत अलग न होने के कारण।

फुटपाथ लगभग खाली थे, हालांकि पानी से चमचमाती सड़क ट्रैफिक से वुरी तरह घिरी थी। कई-कई रंगों की गाड़ियां उसके अंदर और वाहर दोनों तरफ चलती नजर आ रही थीं। सिंगल-डेकर डवल-डेकर लग रही थीं, डवल-डेकर दोहरी डवल-डेकर। चौराहे की वत्ती लाल रहने पर सड़क के अंदर रंगीन ढांचों का कार्निवाल उमगने लगता, जो वत्ती हरी होते ही एक झटके से छितरा जाता। वूंदों के फैलाव में वह सारा दृश्य जैसे एक पारदर्शक ढकने से ढका था, अपनी सारी हलचल के साथ उसमें कैद।

छह पांच। छह दस। छह पंद्रह। आखिर उसके लिए असम्भव हो गया। एक इंतजार से निकल आने के वाद अव अनगिनत मिनट वह इस दूसरे इंतजार में खड़ा नहीं रह सकता था। जैसे अव जितना भी समय वीत रहा था, वह श्यामा के न आने के सामने उत्तरोत्तर हीन हो रहा

बरसाती से फिसलती हुई पारे जैसी बूंदें धीरे-धीरे नीचे की तरफ रास्ता बना रही थीं। बीच में कोई बूंद समुद्र के पास पहुंची नदी की तरह रफ्तार पकड़कर उसकी पतलून पर आ गिरती। लड़की उससे बहुत सट-कर बैठी थी, फिर भी उसका स्पर्श उसे स्त्री-शरीर का स्पर्श न लगकर सिर्फ गीले रबड़ का स्पर्श लग रहा था। लड़की इस ओर से बिलकुल उदासीन थी कि उसके कारण साथ बैठे लोगों को क्या असुविधा हो रही है। उसने बरसाती के अंदर से एक किताब निकाल ली थी और उसे रबर के उभार का सहारा देकर पढ़ने में लीन हो गई थी।

गाड़ी के फिर से रफ्तार पकड़ने तक कुमार खिड़की से बाहर देखने लगा और कुछ ही क्षणों में रबर की बरसाती और उससे टपकती बूंदों की बात भूल गया। सामने आकाश में छितराए बादल थे, जो धीरे-धीरे अपने ही अंधेरे में गुम होते जा रहे थे। बादलों को काटते बिजली के तार थे और उन्हें काटती खिड़की की सलाखें। समुद्र पीछे छूट गया। आसमान में उठे होर्डिंग्ज की लम्बी कतार भी पीछे रह गई। बीच-बीच में यहां-वहां कुछ इमारतें उभर आतीं, पानी की मार से धुंधली पड़ी तसवीरों जैसी। किसी क्षण बिजली की चमक से आकाश में थोड़ी जान आती, फिर वातावरण उसी तरह निर्जीव हो रहता। बारिश अब भी रुकी नहीं थी। हलकी-हलकी बूंदें पड़ रही थीं, पर कुछ देर पहले जिस जोम से पानी उतरा था, उसका उनसे आभास भी नहीं होता था।

एक सलाख पर कुहनी का वजन दिए वह बाहर देखता रहा, जैसे कि कुछ हो जिसे चमकती पटरियों और तेज गुजरती गाड़ियों के बीच से उसे खोज लेना हो। ऐसा कुछ जिसे कई बार समझना चाहकर, समझने के नजदीक पहुंचकर भी वह आज तक समझ नहीं पाया था और अब पट-रियों, तारों और सलाखों की एक-दूसरी को काटती लकीरों के अन्दर से फिर एक बार समझने की कोशिश कर लेना चाहता था। वह कुछ वहीं कहीं था। उदास शाम और झिलमिल बूंदों में घुला-मिला। लोहे की ठंडक और वातावरण की गन्ध में रचा-बसा। उसके अपने अन्दर भी वह था और उस हवा में भी जो ठंडे फाहों-सी आंखों को छू रही थी। बिजली के तारों के उस तरफ, बादलों की ओट में, न जाने कितना कुछ डूबा था, कितनी ऐसी शामें, जिनमें उसने अपने को इसी तरह अस्थिर पाया था, हवा के अन्दर से किसी चीज को पकड़ लेने, समझ लेने की कोशिश में बेचैन, पर वह कोशिश आखिर सिर्फ कोशिश रह जाती थी, एक गहरी उदासी और थकन तक ले जाने वाली कोशिश।

मेरे कहने से कुछ दिनों की छुट्टी लेकर चली आई है। तुमसे अगर थोड़ी-बहुत गाइडेंस मिल जाएगी, तो इस साल फार्म भर देगी। अपना नाम रखने लिए जो थोड़ा-बहुत आता हो, इसे बता देना। जो न आता हो, गोल कर देना।' और अपनी तरफ से उस विषय में निश्चित होकर वे अपने कालेज की मिस रोहतगी के पास चले गए और आने वाले सीनेट के इलेक्शन की बात करने लगे।

वही सब बातें हुई थीं, जो हर बार इस तरह की पार्टियों में हुआ करती थीं। उसी तरह शब्दों-पर-शब्दों के पत्ते चलकर ठहाके लगाए जाते रहे थे। उनके बीच नयी होते हुए भी कमल नयों की तरह व्यवहार नहीं कर रही थी, पर श्यामा बीच-बीच में मुस्कराने की चेष्टा करने पर भी पार्टी का हिस्सा नहीं बन पाई थी। उसे देखकर लगता था, वह बड़ी मुश्किल से वहां समय बिता रही है। खाने के समय उसका सोच-सोचकर एक-एक कौर निगलना और इस तरह प्लेट को नीचे रखना, जैसे कि एक छोटे-से बच्चे को गोद से उतार रही हो, औरों को कैसा लग रहा था पता नहीं, पर उसे जरूर इससे चिढ़-सी हो रही थी। खाना हो चुकने पर गाने का दौर शुरू हुआ, तो कमल से एक बार से ज्यादा कहने की जरूरत नहीं पड़ी। पर श्यामा का चेहरा, उसके नाम का प्रस्ताव होते ही, एकाएक सुर्ख हो उठा, 'जीजा जी जानते हैं मुझे गाना-वाना बिलकुल नहीं आता। आता, तो मैं जरूर सुना देती।' वह एक उमड़ता हुआ भाव था, जिससे उसका चेहरा और-और सुर्ख पड़ता गया; लेकिन इस बार उसे उससे चिढ नहीं हुई। मिस रोहतगी को तो उससे इतनी सहानुभूति हो आई कि उसने झट से गाने के लिए स्वयं अपने नाम का प्रस्ताव कर दिया और बिना किसी समर्थन की प्रतीक्षा किए एक गीत गाने लगी।

पार्टी समाप्त होने तक हमेशा की तरह रात के बारह बज गए थे। उन कुछ घंटों में किसी से भी श्यामा ने अपनी तरफ से बात की हो, ऐसा उसे नहीं लगा। जिस किसी ने भी उससे कुछ पूछा, उसे उसने एक दूरी के साथ जवाब दे दिया या उससे भी कम में, केवल मुसकराकर बात को निकल जाने दिया। उससे तो परिचय होने के बाद उसने आंख भी नहीं मिलाई। खाने की मेज के पास भीड़ में सामने पड़ जाने पर भी हलके-से 'एक्स्क्यूज मी' कहा। जिस बेगानगी के साथ सारा समय अन्दर बैठी रही थी, उसी के साथ बाहर आने पर सबको हाथ जोड़कर अलग-थलग सड़क पर चलने लगी। अपनी पढ़ाई के बारे में न तो उसने ही जिक्र उठाया, न प्रोफेसर मल्होत्रा ने ही। प्रोफेसर मल्होत्रा तो सड़क पर आकर भी

'आपके आने से पहले प्रोफेसर मल्होत्रा ने आपका जिक्र नहीं किया,' वह बोला, 'यह हैरानी की बात लगती है, क्योंकि जिस तरह बातें करने की उनको आदत है ...।'

'मुझे यह हैरानी की बात नहीं लगती,' श्यामा के होंठों पर दबी-सी मुस्कराहट उभर आई, 'बात करने पर उन्हें सभी तरह की बात करनी पड़ती, जो कि अब उन्होंने मेरे ऊपर छोड़ दी है। उन्हें लगता होगा कि मेरे सीधे बात करने से शायद ...।' और वह बिना बात पूरी किए हंस दी। हंसते हुए उसकी लिपस्टिक का रंग उसके निचले दांतों तक फैला नजर आया। या तो उसे लिपस्टिक लगानी आती नहीं थी या वह आते हुए बहुत जल्दी में लगाकर आई थी। रंग भी उसने ऐसा चुना था कि होंठों से बिलकुल अलग ही नजर आता था। हंस चुकने के बाद बोली, 'देखिए, मैं कल से रोज शाम को कुछ वक्त आपसे पढ़ना चाहती हूं। छह सप्ताह की मेरी छुट्टी है। आप अपनी फीस बता दीजिए।'

'आप रोज शाम को पांच बजे आ जाइए। फीस की बात मैं प्रोफेसर मल्होत्रा से ही तय करूंगा।'

'उनसे क्यों ?'

'क्योंकि मैं नहीं चाहता कि सब चीजें उसी तरह हों जिस तरह उन्होंने सोच रखा है, पर आप इसका यह मतलब भी न लें कि आपके ऊपर कोई भारी बोझ पड़ जाएगा इस तरह। ट्यूशन के तौर पर ट्यूशन मैं करता भी नहीं। यह बात प्रोफेसर मल्होत्रा अच्छी तरह जानते हैं।'

'तब तो ...।'

'तब तो क्या ?' वह चुपचाप सीधी नजर से उसे देखती रही।

'आप कुछ कह रही थीं।'

'मैं कह रही थी कि ...शायद मैंने गलती की है इस तरह फैंकली बात करके।'

'क्यों ?'

'क्योंकि आप ...कुछ दूसरी तरह से सीरियस हो गए हैं। मैं तो सोचती थी कि आप जीजा जी को मुझसे ज्यादा जानते होंगे, इसलिए —।'

'मैं जानता हूं उन्हें, इसीलिए कह रहा हूं कि यह बात आप हम दोनों के बीच रहने दीजिए, फिर भी अगर जाते वक्त आपको लगे कि बात उस तरह से नहीं हुई, जिस तरह कि होनी चाहिए थी, तो आप अपनी तरफ से जैसा चाहें कर लीजिएगा।'

वह फिर भी कुछ देर आंखों से उसे तोलती रही, 'आप काफी जिद्दी

मन ऊब रहा था, इसलिए एम०ए० करके वह किसी कालेज में लेक्चररशिप के लिए कोशिश करना चाहती थी, 'लेकिन डर भी लगता है मुझे कि कालेज की नौकरी में अब कर भी पाऊंगी या नहीं। कितनी अजीब बात है कि जिन चीजों से आदमी का मन ऊबता है, उन्हीं की उसे इतनी आदत भी हो जाती है कि उनसे वह अपने को छुड़ा नहीं पाता। यहां आने के बाद से हर रोज मेरा मन अपने क्वार्टर में वापस जाने के लिए तड़पता है। अगर पढ़ाई की लगाम न होती, तो शायद अब तक चली भी जाती।'

कुछ भी बात करते हुए श्यामा बहुत ध्यान से उसके चेहरे की प्रतिक्रियाओं को देखती थी। आंखें उसकी जैसे होने वाली प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में पहले से ही आशंकित हो जाती थीं। उसके मन में उठता हर भाव उसकी आंखों में लहरा जाता था। आंखों के अतिरिक्त उसकी पतली नाक और दुबले चेहरे की अण्डाकार गोलाई पर भी। उसकी आंखों से जो आत्म-विश्वास की कमी झलकती थी, उसकी काफी क्षति-पूर्ति उसके होंठों से हो जाती थी। होंठ चेहरे की तुलना में काफी लाल और भरे हुए थे और बिना लिपस्टिक के अधिक आकर्षक जान पड़ते थे।

शापेनहावर का मृत्युबोध या स्पेंसर की नैतिकता-सम्बन्धी धारणाएं - श्यामा के लिए जैसे दुनिया-भर के दार्शनिकों ने उसी की जिन्दगी को सामने रखकर अपने सारे निष्कर्ष निकाले और सिद्धान्त रचे थे। वह जो कुछ भी पढ़ती-सोचती थी वह जैसे अपनी ही किसी समस्या को सुलझाने के लिए। उसके सामने किसी चीज की व्याख्या करते हुए कई बार अचानक वह बीच में रुक जाता था। श्यामा आंखें मूंदकर उसकी बात सुनती हुई उस बात से आगे कहीं और पहुंच चुकी होती थी। कुछ क्षण खामोशी में बीतने से जैसे उसके अन्दर की लय टूट जाती थी और वह आंखें झपकती हुई अपने को सचेत कर लेती थी, 'कुछ समझ में नहीं आता और जो कुछ समझ में आता है, उससे दिमाग और गुंझल में फंस जाता है।'

श्यामा जब देर तक सीधे उसकी आंखों में देखती रहती थी तो उसके अपने विचारों का तार भी टूटने लगता था। वह श्यामा की आंखों में उसकी उलझन के अतिरिक्त और भी कुछ ढूंढ़ने लगता था। उसे लगता था कि पढ़ना श्यामा के लिए केवल एक बहाना है, एक ओढ़ा हुआ लबादा जिसके अन्दर से उसका अपना-आप बाहर आने के लिए छटपटाता रहता है। कोई चीज है, जिसे स्वीकार करने की सीमा पर पहुंचकर भी उसे वह बिन्दु नहीं मिल पाता, जहां उसे स्वीकार किया जा सके। इसलिए वह जब भी देखती है, उसकी नजर में एक तोलने-परखने का-सा भाव रहता है। यह जानने का कि सामने बैठा व्यक्ति कहां तक इस बात का अधिकारी है

ब्रेरी से कौन-सी किताबें निकलवाई हैं, कोई आर्टिकल लिखा है या नहीं; पर दीदी अगर उस वक्त पास बैठी हों, तो भी उठकर चली जाती हैं। मुझे लगता है कि कोई चीज है, जो उन्हें पसन्द नहीं है, पर उसका जिक्र वे जबान पर नहीं लाना चाहतीं। वैसे जीजा जी के बात करने के ढंग में कुछ है, जो मुझे भी कहीं अखरता है। खासतौर से जब वे कुरेद-कुरेदकर पूछने लगते हैं कि मंडी में मेरी जान-पहचान के दायरे में कौन-कौन लोग हैं वहां मैं अपनी शामें किस तरह बिताती हूं, मेरी छुट्टी का दिन किस तरह कटता है। या जब वे अपने बारे में बात करने लगते हैं कि यहां इतने परिचितों के होते हुए भी वे अपने को कितना अकेला महसूस करते हैं। जितने लोगों को वे जानते हैं, उनमें से हर एक की अन्दर की जिन्दगी कितनी खोखली है। वे अगर अपनी शामें घर पर ठीक से बिता सकें, तो कभी किसी के यहां जाना पसंद न करें। उनकी बातचीत में कहीं एक इशारा दीदी की तरफ होता है और दूसरा इस तरफ कि मैं आपसे पढ़ने आती हूं, तो मुझे थोड़ा सावधान रहकर आना चाहिए, क्योंकि पिछले दिनों आपको लेकर खासा स्कैंडल उठ खड़ा हुआ था एक। आप पढ़ाते अच्छा हैं, लेकिन…,' और वह हंस दी थी, 'उन्हें शायद आपसे ईर्ष्या है कि मैंने ऐसा विषय क्यों चुना है, जो आप पढ़ा सकते है, वे नहीं पढ़ा सकते। वे आपके बारे में पता नहीं कितनी बातें बता चुके हैं मुझे। कि आपके कालेज में भी कोई। लता नाम बताया था शायद। आप ही के विभाग में पढ़ाती थी। पहले आपसे पढ़ती थी, बाद में आपने उसे अपने विभाग में ले लिया था। अफवाह थी कि हर दोपहर को वह कालेज से आपके यहां आ जाती है और शाम होने पर घर जाती है। इससे उसके घर के लोगों ने उसकी नौकरी छुड़वा दी थी। बाद में सुना जाने लगा था कि आप भी नौकरी छोड़कर उसके साथ कहीं निकल जाने वाले हैं; पर फिर पता नहीं क्या हुआ कि बात जहां-की-तहां रह गई और उसकी किसी दूसरी जगह शादी हो गई। ठीक बात है यह?'

'हां, ठीक ही है एक तरह से।' उसने जिस स्वर में कहा था उससे श्यामा पर स्पष्ट हो जाना चाहिए था कि वह उस विषय में और बात नहीं करना चाहता; लेकिन अपनी बात की धुन में श्यामा का इस तरफ ध्यान नहीं गया था या शायद जान-बूझकर उसने ध्यान नहीं दिया था।

'एक तरह से मतलब?'

'मतलब कोई भी बात उतनी सीधी-सपाट नहीं होती, जितने सपाट ढंग से वह कह दी जाती है।'

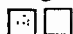
'इसीलिए तो मैं आपसे जानना चाहती हूं। आप सचमुच उसे बहुत



अकेले प्रोफेसर मल्होत्रा की बात नहीं थी, उस शहर के वातावरण में ही कुछ था जिससे चार साल वहां काट चुकने के बाद उसका मन लगातार वहां से उचाट होता जा रहा था। अपने अन्दर से वह बहुत दिन पहले उस शहर को छोड़ चुका था, अगर कोई चीज उसे रोके हुए थी, तो वह थी अपने इरादे को प्रयत्न में बदलने से पहले की असुविधापूर्ण मन:स्थिति, जिसमें जैसे अपने अस्तित्व को ही उसने एक अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर रखा था। उसका वहां रहना, जैसे रहना न होकर कहीं और जाकर रहने से पहले का अन्तराल-भर था, किसी दूसरी भूमिका में जीने से पहले का विराम। वह दूसरी भूमिका किसी बड़े शहर में जाकर शुरू होने को थी। कहां और किस तरह से, यह वह नहीं जानता था, क्योंकि कुछ दिन 'सिचुएशन्स वेकैंट' का कालम पढ़ने के बाद उसने उतना-सा प्रयत्न करना भी छोड़ दिया था। एक और चीज भी थी जिसने पिछले दो साल वहां गुजारने में सहायता दी थी। लता वाला प्रकरण समाप्त हो जाने के बाद वह उसी तरह अपने आस-पास की प्रतिक्रियाओं का साक्षी बना रहा था, जैसे एक प्राणान्तक दुर्घटना में से गुजरने के बाद कोई व्यक्ति स्वयं उसकी छान-बीन में शामिल होने का अवसर पा जाए।

वह अपनी जिन्दगी में एक जगह आकर रुक गया था, तो सारा शहर ही उसे रुका हुआ लगता था। हर रोज साथ उठने-बैठने वाले जितने लोग थे, बाली, जगधर, सुभाष, मिर्जा, उमेश, हजारिया, वे सब उसे अपने आस-पास के गतिरोध का हिस्सा बल्कि उसका कारण जान पड़ते थे। बाली की हर एक से अतिरिक्त आत्मीयता अन्दर की उदासीनता का ही एक रूप थी। सामने रहने पर वह जितनी तत्परता से किसी की समस्याओं में दिलचस्पी लेता था, सामने से हट जाने पर उतनी ही आसानी से उसके विषय में भूल भी जाता था। सुभाष और हजारिया की एकमात्र आवश्यकता 'अच्छा समय' बिताने की थी। उनके लिए किसी की भी उपयोगिता इस बात में थी कि उससे उन्हें 'थोड़ी देर हंसने' में कितनी सहायता मिलती है। मिर्जा की जिन्दगी से विरक्ति उस सीमा तक पहुंच चुकी थी कि किसी तरह एक शाम और काट लेना ही उसके लिए अपने में एक उद्देश्य होता था, जब और कोई चारा नजर नहीं आता था, तो वह सारी शाम क्लब में जाकर रमी खेलता, हारता और कुढ़ता रहता था। जगधर और उमेश बियर पीने के साथी थे। साथी इस अर्थ में कि उमेश को सामने बैठकर गाली सुन सकने वाले एक व्यक्ति की आवश्यकता रहती थी, जिसे जगधर अच्छी तरह पूरी कर देता था। जब दोनों में झगड़ा हो जाता था,

आखिर मुझी से तय करनी पड़ेगी।'



उस दिन कालेज से उसे छुट्टी थी; पर दिन-भर वह घर से बाहर नहीं निकला था। कुछ देर पुराने कागज छांटता रहा था, फिर किसी से प्रजेंट में मिला सिगार सुलगाकर छांटे हुए कागजों को फाइलों में लगाता रहा था। कभी साल-छह महीने में एक बार वह यह काम कर लिया करता था, जिससे अपने आस-पास का बासीपन कुछ हद तक दूर हो जाता था और कम-से-कम एक शाम नयी शुरुआत की ताजगी में बीत जाती थी। कागजों के साथ उसी रौ में कमरों की भी सफाई हो जाती थी, कुर्सियों-मेजों को थोड़ा इधर-से-उधर सरकाकर एक नयी सेटिंग का आभास पा लिया जाता था। इसी प्रक्रिया में एक बार अपने अन्दर की यात्रा भी हो जाती थी। मुद्दत से टाले हुए संदेहों और संशयों से सामना कर लिया जाता था।

खाना खाने के बाद पूरी दोपहर उसकी क्लब-चेयर में लेटकर श्यामा के बारे में सोचते हुए बीती थी। श्यामा जब से आने लगी थी, एक दिन की भी छुट्टी या नागा उसने नहीं किया था। जैसे कोई बंदिश थी, जिसके अन्तर्गत श्यामा को हर रोज शाम को आना ही होता था और उसे घर पर रहकर उसके आने की प्रतीक्षा करनी ही होती थी। अगर श्यामा के आने के समय वह दूसरे कमरे में कुछ काम कर रहा होता, तो वह चुपचाप आकर बाहर के कमरे में बैठ जाती थी, नौकर के हाथ भी अपने आने की सूचना उसे नहीं भेजती थी; लेकिन ऐसा बहुत कम होता था कि श्यामा के चुपचाप हलके पैरों उधर आ बैठने पर उसे उसके आने का पता न चले। उस कमरे की हवा में ही कुछ ऐसा परिवर्तन आ जाता था कि वह हाथ का काम छोड़कर उस तरफ जा पहुंचता था, 'आ गयीं आप? ज्यादा देर तो नहीं हुई आये?' पर वह भी जानता था और श्यामा भी कि उसका यह सवाल झूठमूठ का होता है।

श्यामा हर रोज आती थी, हर रोज बात उसकी पढ़ाई के किसी पक्ष को लेकर ही शुरू होती थी; लेकिन कई दिन हो गए थे जब से पहले दस-बीस मिनट के बाद, जैसे एक आपसी समझौते से, वे लोग उस विषय को छोड़कर किन्हीं और ही विषयों पर बात करने लगते थे। श्यामा अधिकतर प्रोफेसर मल्होत्रा के घरेलू जीवन की चर्चा करती थी या अपनी चार साल की बिटिया की, जिसे छोड़कर आने के लिए रोज उसे नये नये बहाने सोचने पड़ते थे या मंडी के अपने घर की, जहां चार कमरों में वह अकेली रहती थी। वह अपने आस-पास के परिचितों के

लान में टहल रहा था। श्यामा गेट से दाखिल होते ही उसे सामने देखकर मुसकरा दी थी। उसे शायद लगा था कि उसके देर कर देने से वह उसी की प्रतीक्षा में बाहर निकल आया है। पास आकर वह बोली थी, 'आप आज नाराज तो नहीं हैं?'

'क्यों?'

'कहते होंगे कि रोज आकर तो वक्त बर्बाद करती ही है, आज न आकर कर रही है।'

'मैं सोच रहा था आज शायद छुट्टी की है तुमने।'

'दिन तो सचमुच ऐसा है कि छुट्टी करनी ही चाहिए। मेरा मतलब है कि कमरे में बैठकर मगजपच्ची करने से छुट्टी। मैं आ रही थी, तो व त अच्छा लग रहा था मुझे सड़क पर चलते हुए। कैसा रहे अगर एक दिन की क्लास सड़क पर रखी जाए?'

श्यामा के स्वर में एक तरह की चुनौती थी। जानते हुए भी कि उस बस्ती में उन दोनों के साथ-साथ घूमने निकलने पर किस तरह की टिप्पणियां की जा सकती हैं, क्या वह जान-बूझकर उस चीज का खतरा उठाना चाहती थी? उसके मन में क्या सचमुच कहीं कोई डर नहीं था या वह सिर्फ उसे आजमाने के लिए एक दिखावा कर रही थी?

'मुझे कोई एतराज नहीं है,' वह उसके साहस की सीमा आंकता बोला था, 'लेकिन इतना सोच लो कि रास्ते में अगर पानी पड़ने लगा, तो···।'

'ज्यादा-से-ज्यादा भीग जायेंगे, इतना ही तो!'

श्यामा की आंखों में एक उपहास-सा था कि बताओ इसके बाद और किस चीज का डर दिखा सकते हो मुझे?

'चाहो, तो एक छाता साथ में ले सकते हैं।'

आंखों का भाव श्यामा के होंठों पर फैल आया, 'कितना अजीब लगेगा कि बारिश में भीग रहे हैं, मगर छाता हाथ में लिए हुए। छाते से बचाव कितना होता है?'

वह जिस तर्क से चल रही थी, उसे उसकी सीमा तक निभाना चाहती थी। वह उसे और अवसर न देकर गेट की तरफ बढ़ गया था, 'मैं यह मानकर चल रहा हूं कि कम-से-कम इस वजह से अब लौटने की बात नहीं करोगी।'



उसका घर बस्ती के एक सिरे पर था। एक तरफ एक ही तरह के बने पीले मकानों की कतारें थीं, दूसरी तरफ ऊंची-नीची जमीन जहां नये

वह बिना और कुछ कहे कूदकर तारों को पार कर गया। उधर से हाथ बढ़ाकर बोला, "मैं मदद करूं?"

'नहीं, मैं पार कर लूंगी।' श्यामा ने एक बार कोशिश की कि साड़ी को किसी तरह संभालकर तारों के ऊपर से लांघ आए, पर तार इतने नीचे नहीं थे। दूसरी बार की कोशिश में वह साड़ी को छोड़ती हुई संकोच के साथ पीछे हट गई। उछलना चाहते ही उसकी टांगें जांघों के ऊपरी हिस्से तक पेटीकोट से बाहर उघड़ आई थीं।

वह उसकी कोशिश पर हंसने जा रहा था, जब यह वाक्य सुनकर उसकी हंसी गले में रह गई, 'तुम चलो न आगे, खड़े क्यों हो वहां?' इसमें जहां एक झिड़की थी, वहां एक निकटता का दावा भी था। तो क्या श्यामा को लगा था कि वह उसे उस उपहासास्पद स्थिति में देखने के लिए जान-बूझकर वहां खड़ा रहा था? अगर ऐसा था, तो उसने पहले ही क्यों नहीं उससे आगे चलने को कह दिया था? और असावधानी के उस एक क्षण में उसने श्यामा को जितना देखा, क्या वह उसी के कारण था कि उसके कान गरम हो उठे थे और कनपटियां अन्दर से आवाज करने लगी थीं? श्यामा की आंखों में कुछ ऐसा था, शिकायत से बढ़कर, कि वह चुपचाप मुंह मोड़कर खेतों की पगडंडी पर आगे चलने लगा। मगर चलते हुए भी वह जैसे पीठ से सब-कुछ देख रहा था कि फिर उसी तरह श्यामा ने तारों पर से उछलने की एक और कोशिश की है, कि इस बार भी अपनी कोशिश में वह सफल नहीं हो सकी, कि तारों के उस तरफ अब वह असहाय भाव से खड़ी उसे देख रही है, सोच रही है कि उसे आवाज देकर रोक ले या नहीं। कुछ देर उसी तरह चलते रहने के बाद उसे लगने लगा कि श्यामा अब तक उस तरफ खड़ी नहीं रही, पार करने की कोशिश में उसकी साड़ी तारों में उलझ गयी है, वरना वह जितना आहिस्ता चल रहा था, उसे देखते हुए कोई कारण नहीं था कि वह अब तक उसके बराबर न पहुंच जाती। मगर रुका वह फिर भी नहीं, न ही उसने पीछे मुड़कर देखा ही। देखा जब पीछे से श्यामा की आवाज सुनायी दी, 'सुनो!'

वह आवाज श्यामा की परिचित आवाज से काफी अलग और बारीक थी। उसने देखा कि श्यामा तारों को पार कर आई है, पर इस तरफ आकर जमीन पर बैठी न जाने क्या ढूंढ़ने या ठीक करने की कोशिश कर रही है।

'क्या हुआ?' वह उसकी तरफ लौट पड़ा।

'मैं समझती हूं अब हमें लौट चलना चाहिए।'

जाती कहां है, इसका भी कुछ पता है ?'

'सरकडों के उस तरफ आगे एक रहंट है। मैं एक वार पहले भी दिन में वहां तक जा चुकी हूं। जीजा जी के घर की तरफ से आयें, तो रास्ते में तार नहीं पड़ते। उस दिन वहां मुझे भुनी हुई मक्की खाने को मिल गई थी।'

'उस वार अकेली आई थीं या·· ?'

श्यामा का सिर तेजी से उसकी तरफ मुड़ गया, 'और किसके साथ आती ? जीजा जी तो दिन-भर घर पर रहते नहीं और दीदी को घूमने का शौक ही नहीं है। इस लिहाज से सिर-फिरी अकेली मैं ही हूं। आज भी अगर मैं ही खींचकर न लाती, तो क्या तुम भी निकलते इस वक्त वाहर ?'

पगडंडी काफी संकरी हो गई थी जिससे वे लोग आगे-पीछे ही चल सकते थे। श्यामा के ब्लाउज की पीठ पर बूंदों की एक जाली-सी वन गई थी, जिससे ब्रेसियर की पट्टी के ऊपर-नीचे का हिस्सा पहले से ज्यादा पार-दर्शक हो गया था। अन्दर से झलकती खाल जैसे बूंदों को अपने में पी रही थी, सूखी मिट्टी-जैसा ही कुछ था उसके रूखेपन में। श्यामा को विना पीछे देखे भी इस वात का आभास हो रहा था शायद कि उसकी आंखें उसकी पीठ पर अटकी हैं, क्योंकि पगडंडी जरा खुली होते ही वह उसके वरावर आकर चलने लगी। अपने पल्लू को भी, जो वार-वार उसके शरीर से छू जाता था, उसने थोड़ा समेट लिया; लेकिन उस तरह चलने से उसकी अधनंगी वांहों के रोएं उसके रोओं से टकराने लगे। कुछ ही कदम उस तरह चलने के वाद श्यामा ने उसे अपने से आगे निकल जाने दिया।

'क्या सोच रहे हो ?' कुछ देर में श्यामा ने ही फिर से वात शुरू की।

'पता नहीं क्या ? शायद कुछ भी नहीं।'

'कुछ न सोचना तो सम्भव ही नहीं है। मेरा खयाल है मेरे वारे में कुछ सोच रहे हो।'

'तुम्हारे वारे में क्या ?'

'पता नहीं क्या; पर जिस तरह अचानक तुम चुप हो गए···।'

वह रुक गया। श्यामा भी उसके वरावर आकर खड़ी हो गई।

'उस दिन प्रोफेसर मल्होत्रा के वारे में जो वात वता रही थीं तुम···।' वह कहने लगा।

'मैं जानती थी तुम यही वात सोच रहे हो। अगर थोड़े में उत्तर दूं, तो कह सकती हूं कि उनके जो रंग-ढंग हैं इन दिनों उनसे मुझे लगता है, मुझे वक्त से पहले लौट जाना होगा यहां से। अच्छा किया तुमने पूछ लिया, नहीं तो अपनी तरफ से वताने में मुझे संकोच होता। कई दिन से

न्योन लाइट्स की कतार थी लम्बी-सी। कई प्लेटफार्म थे खचाखच भीड़ से भरे और अब वैसा ही एक और प्लेटफार्म सामने था, जहां उसे उतरना था।

गाड़ी के रुकने के पहले ही कुमार अपनी सीट से उठ गया। खिड़की की ठण्डी सलाख उसकी कुहनी में उभर आई थी। दरवाजे के पास काफी भीड़ थी। अपने लिए रास्ता बनाने में उसे काफी संघर्ष करना पड़ा। उसने प्लेटफार्म पर पांव रखा ही था कि गाड़ी ह्विसल देकर आगे चल दी। कुछ ही क्षणों में आसपास की भीड़ के साथ वह बाहर स्टेशन के अहाते में पहुंच गया। विजिट खजुराहो। शालीमार पेंट्स। दो या तीन बच्चे, बस।

वह भीड़ से निकल आया था, फिर भी जैसे कोई चीज पीछे से लगातार उसे धकेल रही थी। जिस प्लेटफार्म पर वह उतरा था, उससे पीछे के दो प्लेटफार्मों पर एक-साथ दो तरफ से दो गाड़ियां आ गई थीं। आसपास से गुजरती आकृतियों में छातों और रेन कोटों की संख्या अब काफी नजर आ रही थी। जैसे इतनी ही देर में पूरे शहर ने अपने को मानसून से लड़ने के लिए लैस कर लिया था। वह अहाते से सड़क पर आया, तो चारों तरफ उसे एक उदास भीगापन महसूस हुआ। शायद सड़क का मैल धुल जाने की वजह से। पर इससे सड़क पहले से और बदरंग निकल आई थी। यहां-वहां मुट्ठी-मुट्ठी-भर गड्ढों में जमा पानी, जगह-जगह कोलतार की बिगड़ी हुई रंगत, एक आदमी का चेहरा वैसा होता, तो उसके लिए किसी सैनेटोरियम में जगह ढूंढ़ी जाती। सामने एक गीली बस चलने के लिए तैयार खड़ी थी। बहुत-से लोग उस तरफ बढ़ रहे थे। हरे रेनकोट वाली वह लड़की भी. जो अभी-अभी गाड़ी में उसके साथ बैठी थी।

बारिश रुकी होने से लड़की ने रेनकोट उतार लिया था और बहुत नाप-नापकर कदम रखती चल रही थी। ऊंचा कद, दमठोंक गोलाइयां, सीधी-सधी हुई चाल। मेक-अप से कमीज-चूड़ीदार तक हर चीज में एक भड़कीलापन। बस के दरवाजे के पास वे लोग साथ-साथ पहुंचे। साथ-साथ अन्दर दाखिल हुए। सीटें तब तक सब रुक चुकी थीं। और भी कुछ लोग चमड़-दस्तों को थामे खड़े थे। वे दोनों भी उनमें शामिल हो गए।

बस के स्टार्ट होने के साथ ही कुमार ने मन में स्टाप गिनना शुरू कर दिया। वहां से आठवें स्टाप पर उसे उतरना था। उसके बाद भी अपने कमरे में पहुंचने तक आधा किलोमीटर चढ़ाई का रास्ता पैदल तय करना था।

सड़क, रोशनियां, दुकानें, होर्डिंग। बेटर बाई कैप्स्टन।

'नहीं, यह बस का सफर।'

और दो स्टाप। कैडबरीज मिल्क। एम् एम् फोम। इस बीच वह सिर्फ एक बार उसकी तरफ देखकर मुसकराई, क्योंकि कोई कह रहा था, 'आबादी कम करने के दो ही तरीके हैं, या तो शहर पर बम गिराये जाएं या यहां के लोगों को बरफ के घरों में रखा जाए।'

अगला स्टाप आने से पहले वह 'प्लीज' कहकर दरवाजे की तरफ बढ़ने लगी। कुमार ने जगह देने की काफी कोशिश की, फिर भी पीछे का दबाव इतना था कि जाते-जाते लड़की की छातियां उसकी बांह से रगड़ गयीं, फिर एक बार दोनों ने एक साथ कह दिया, 'सारी।' स्टाप आ गया था। ग्लूकोज ग्लैक्सो।

लड़की जब तक दरवाजे के पास पहुंची, तब तक बाहर के लोग अंदर आने लगे थे। उनसे जूझते हुए उतरने की कोशिश में उसकी जो आवाज सुनाई दी, वह काफी सख्त और तीखी थी, 'फर्स्ट लेट मी गेट डाउन प्लीज। आई से, यू वेट देयर। डोंट यू सी ए लेडी इज गेटिंग डाउन?' बस के चलने से पहले एक बार उसकी झलक और दिखाई दे गई, कैस्टन नेवीकट के सामने से गुजरते हुए। वही नाप-नापकर रखे गए कदम। मिनट-भर पहले का सफर वह अब पीछे छोड़ चुकी थी।

कुमार अपने स्टाप पर उतरा, तो बूंदाबांदी फिर शुरू हो गई थी। एक तरफ समुद्र था, दूसरी तरफ माउंट मेरी हिल। उसी पहाड़ी के एक पुराने खस्ताहाल बंगले में उसे जाना था, लेकिन बारिश के कारण, या समुद्र-तट के खिंचाव की वजह से या शायद सिर्फ चाय की जरूरत से, वह पहाड़ी की तरफ न जाकर समुद्र के किनारे बसे उस ईरानी ढाबे में चला गया जहां कई बार सुबह नाश्ते के लिए जाया करता था। वहां की खिड़कियों से चट्टानों से ढका तट दूर तक देखा जा सकता था। समुद्र ज्वार पर होता था, तो वहां बैठकर चाय पीते हुए लगता था किसी जहाज की केबिन में सफर करते हुए नीचे उमड़ी लहरों को ताक रहे हैं।

ढाबे के बेसमेंट में, जहां वह बैठा करता था, उस वक्त कोई भी नहीं था। समुद्र उतार पर था, इसलिए उस झुटपुटे में भीगी रेत और काली चट्टानों का फैला सिलसिला खाली और भावहीन लग रहा था। अकेली चट्टानें, एक-दूसरी के ऊपर लदी हुई चट्टानें, सब-की-सब उस खामोश विस्तार में खोई हुई, निरर्थक। पास की एक चट्टान पर तीन-चार मुर्गाबियां, शायद पानी के किनारे की तरफ लौटने की प्रतीक्षा में, उतनी ही निरर्थक। वह सोचने लगा कि पास जाकर वह उन्हें उड़ाने की कोशिश करे, तो वे किस तरफ को उड़ेंगी, समुद्र की तरफ या उस स्याह पड़ती

रहे हैं या इनका स्वभाव ही ऐसा है। शादी के बाद जब पहली बार हमारे यहाँ आये थे, तब मैं बारह-तेरह साल की थी। तब भी जिस तरह मुझे अपने साथ सटाकर बात किया करते थे, उससे मुझे अच्छा नहीं लगता था। बाद में जब मैं पन्द्रह-सोलह साल की थी, तब एक बार इन्होंने ऐसी कोशिश की थी कि मुझे इन्हें डांट देना पड़ा था। उस वक्त इन्होंने बहुत मिन्नत की थी कि मैं किसी से कहूं नहीं, ये आगे कभी मुझे शिकायत का मौका नहीं देंगे। उसके बाद बहुत दिनों तक हम लोगों का इनसे पत्र व्यवहार भी नहीं रहा। मेरे विवाह पर इन्होंने एक तार दिया था, फिर मुझे एक पत्र लिखा था देव के गुजरने की खबर पाकर, लेकिन जब से मैंने मंडी में नौकरी की है, तब से दीदी के बहुत पत्र आने लगे थे। पता नहीं वे खुद चाहकर लिखती थीं या इनके कहने से लिखना शुरू किया था उन्होंने। मैं एम० ए० की तैयारी कर रही हूं, यह जानकर दीदी ने ही यहां आने के लिए लिखा था मुझे। मैं भी यह सोचकर चली आई थी कि इतने साल बीत गए हैं, परिस्थितियां भी बहुत बदल गई हैं, अब कोई उस तरह की बात इनके मन में नहीं होगी, लेकिन यहां आकर लगा कि इनके लिए यही मौका है। जैसे रात को देर-देर तक बातें करना, मेरा हाथ हाथ में लेकर उसकी रेखाएं पढ़ना। मेरा तुम्हारे यहां आना इन्हें बर्दाश्त करना पड़ता है, मगर लौटने में जरा भी देर हो जाए, तो ऐसी नजर से देखते हैं, जैसे मेरी साड़ी की एक-एक सलवट का लेखा-जोखा कर रहे हों मन में। कल की शाम मैं तुम्हारे यहां से गई, तो दीदी घर पर नहीं थीं। बच्चों को साथ लेकर किसी के जन्म-दिन की पार्टी में गई थी। जाना इनको भी था, पर ये काम के बहाने घर पर रह गए थे। मेरी बिटिया भी दीदी के साथ गई थी। मुझे देखते ही इन्होंने डांटना शुरू किया कि मैं इतनी-इतनी देर से तुम्हारे यहां से लौटती हूं, पता है बस्ती में इसे लेकर क्या-क्या बातें हो रही हैं? कहा उन्होंने इस ढंग से कि मेरा रोना छूट गया। इस पर वे पास आकर मुझे चुप कराने के बहाने पहले सिर पर, फिर कन्धों पर हाथ फेरने लगे और धीरे-धीरे·· मेरे परे धकेलने से लड़खड़ाकर गिर गए होते, पर संभल गए किसी तरह। मैं अपने बकसे उसी वक्त पैक करने जा रही थी, पर एक तो दीदी के खयाल से रुक गई, दूसरे सोचा साधारण ढंग से जाना ही ठीक होगा, दो-एक दिन और रुककर।'

एक कनखजूरा चारपाई के पास सरसरा रहा था। उसे उसने जूते की नोक से परे उछाल दिया। सिगरेट की जरूरत महसूस होने से जेब में डब्बी निकाली, लेकिन सब सिगरेट भीगकर बेकार हो गए थे। डब्बी को भी उसने कनखजूरे के पास उछाल दिया। श्यामा कुछ देर रुककर

नाराज होकर वात की, तो लता का चेहरा जिस तरह का हो आया, उसके होंठ जिस तरह फीके पड़ गए, माथे की नसें जिस तरह कांपने लगीं और आंखें भीड़ में खो गए बच्चे जैसी हो रहीं, उससे उसे डर-सा लगा कि कहीं उसे हिस्टीरिया का दौरा न पड़ जाए। वह जानता था, लता अन्दर-ही-अन्दर एक दुविधा में है। घर में शासन करने वाली उसकी मां थी। वह मां से डरती थी और मां के कहने से एक सिविल इंजीनियर से उसकी शादी करने की वात तय हो चुकी थी। लता उस शादी से इंकार करना चाहते हुए भी यह बात जवान पर नहीं ला पाती थी। एक बार जब वह चाय पर उनके यहां गया, तो मां ने लता के सामने ही उससे कहा था, 'यह शादी के लिए टालमटोल करती रहती है, आप भी इसे समझाइए। आपसे पढ़ती रही है. उम्र का चाहे उतना फर्क नहीं है, फिर भी उस रिश्ते से आपकी वेटी की तरह है। आपकी इज्जत भी वहुत करती है। आप समझाएंगे, तो समझ जाएगी। उन लोगों ने इतने दिन मेरे कहने से इन्तजार किया है, पर सालहा-साल तो वे इन्तजार में नहीं वैठे रहेंगे?' उस शाम उनके घर से आकर वह चौरस्ते पर इस तरह खड़ा रहा था, जैसे कि दिमाग में सड़कों का हिसाव ही न वन रहा हो। जव चाय पर वुलाया गया था, तो उसने मन में कुछ और ही सोचा था, लेकिन —। अपने घर में लता का रूप भी उसे विलकुल और-सा लगा था। वहां उसने उससे काफी दूरी वनाए रखी थी। व्यवहार में भी, वातचीत में भी। उसकी वड़ी वहन तो वार-वार कमरे में आकर इस तरह संदेह-भरी दृष्टि से उसे देखती थी, जैसे कि उसके वहां रहते कमरे की कोई भी चीज उसे सुरक्षित नहीं लग रही हो। जव मां ने वह वात कही थी, तो लता गुम-सुम होकर एक तरफ देखती रही थी। कुछ क्षणों के लिए उसके साथ कमरे में अकेली होते ही वह कुछ कहने को हुई थी, लेकिन तभी मां के लौटकर आ जाने से उसके शब्द गले में ही अटके रह गए थे। उसके वाद वह एक ही वार और उनके यहां गया था। तव जव लता कुछ दिन बुखार में पड़ी रही थी। उस वार किसी ने उसका आना पसन्द नहीं किया था। लता की मां ने तो उससे वात तक नहीं की थी। वह कुछ ही देर वैठकर वहां से लौट आया था। लता से वह अकेले में इतनी ही वात कह पाया था, 'देखो, अव जल्दी से ठीक हो जाओ, ईश्वर के लिए —।' लता ने वुखार में भी मुसकराने की कोशिश की थी, 'ईश्वर के लिए? तुम्हारे लिए नहीं?

उस दिन घर लौटकर उन शब्दों को मन में दोहराते हुए उसे लगता रहा जैसे उसे भी हलका वुखार हो आया हो।

रही।

'तो मुझे मानना चाहिए कि तुम आज आखिरी बार आई हो ?'

'यह तो मैंने नहीं कहा ?'

'लेकिन मतलब तो यही निकलता है।'

लता ने दरवाजे के दस्ते पर हाथ रख लिया, 'मैं अब जाऊंगी। कालेज से चेक लेकर दो बजे से पहले कैश कराना है।'

वह सिर में एक तपिश-सी महसूस कर रहा था, जैसे वहां गैस भर रही हो। वह गुस्सा था, वितृष्णा थी या बेबसी थी ? जो भी था उससे उसका चेहरा काफी विकृत हो गया था, 'तुमने नहीं कहा, तो मैं अपनी तरफ से कह रहा हूं। आज के बाद तुम कभी मत आना।'

वह दस्ते पर रखे अपने हाथ को देखती रही। नीली नसें जर्द हाथ पर लकीरों-सी दिख री थीं। चमड़ी से अलग ऊपर को उभरी हुई। हाथ हिला और दरवाजा थोड़ा खुल गया। उसने लता का हाथ पकड़कर नीचे को झटक दिया, 'मैं यह मानकर चलूंगा कि जो भी कुछ तय हुआ है, तुम्हारी मर्जी से हुआ है। आज आकर भी मां-बाप के सामने अपनी मजबूरी की बात करना सिर्फ बहाना है। तुमने शुरू से ही मेरे साथ अपने सम्बन्ध को एक बहलावे की तरह समझा है। इससे कुछ दिन ठीक निकल गए, इतना ही काफी नहीं है !'

लता की आंखें फिर उसी तरह भीड़ में खोई-सी हो गईं। उसने जैसे कोशिश से अपनी बांहें उठाईं और उसके कंधों पर रख दीं, 'मुझे माफ कर दो।'

वह उसकी बांहें भी झटके से हटाना चाहता था, पर बहुत आहिस्ता से हटा पाया, 'वैसे भी मेरे यहां आने का मौका नहीं रहेगा अब। तुम्हें तो जाना ही है यहां से। मैं भी कोई दूसरी नौकरी ढूंढ़कर जल्दी ही इस शहर से चला जाऊंगा।'

लता ने धीरे-धीरे दरवाजा खोला। एक-एक इंच करके। पर बाहर नहीं निकली। कुछ पल उसे देखती रहकर बोली, 'एक बात कहूं ?' और वह फिर एक बार उसके बहुत पास आ गई, 'यह भी तो हो सकता है कि बिना ब्याह के तुम मुझे—।'

बहुत पास आया हुआ वह चेहरा था, डरा हुआ और असहाय। नाक, ठोड़ी, होंठ, आंखें सब परिचित, फिर भी उसे लग रहा था, जैसे उन सबको पहली बार देख रहा हो। बहुत अचानक वह चेहरा, जो अपनी एक अलग सत्ता रखता था, उसके लिए, एकदम अचानक उन सब चेहरों जैसा हो गया था, जिन्हें उसी के कारण, वह अपने लिए अजनबी

'क्या देख रहे थे ?' श्यामा ने पूछ लिया। अपने हाथ से ही उसे आभास हो गया था कि उसे कई क्षण लगातार देखा गया है।

'पता नहीं क्या।'

'उलटी तरफ से भी हाथ देखा जाता है क्या ?"

'मैं हाथ नहीं देख रहा था।'

'तो ?'

'अपने हाथ से तुम्हारे हाथ की बनावट को मिला रहा था।'

'मेरे हाथ की बनावट को ?' श्यामा हंस दी और अपने हाथ को उलट-पलटकर देखने लगी, 'ऐसा बेडौल हाथ किसी का क्या होगा ? तुमने अच्छा किया जो अपना हाथ हटा लिया। मुझे शर्म आ रही थी कि तुम्हारे हाथ के सामने मेरा हाथ कैसा मरा-मरा-सा लग रहा है और—।'

'ऐसा नहीं है।' वह श्यामा का हाथ अपने हाथ में लेकर बुदबुदाया, पर अपने हाथ में वह हाथ उसे सचमुच बिलकुल बेजान-सा लगा, प्लास्टर आफ पेरिस के लोंदे जैसा, जिसे चाहे जिस तरफ को मोड़ा जा सकता हो।

'नहीं है ऐसा ?'

'नहीं।'

श्यामा ने हलकी कोशिश से अपना हाथ छुड़ा लिया, तब तो—।'

'तब तो क्या ?'

'तब तो तुम भी—।'

'मैं भी—?'

श्यामा की आंखों में हलकी-सी चमक आकर बुझ गई। वह भट्ठों के उस तरफ देखने लगी जहां आकाश का रंग इधर से कहीं गहरा था।

'मैं भी—?' इस बार उसने हाथ से श्यामा का मुंह अपनी तरफ कर लिया। श्यामा ने विरोध नहीं किया, इससे उसे अपने शरीर में भूचाल-सा उठता महसूस हुआ, लेकिन श्यामा की आंखों में कुछ न था, आश्चर्य जैसा, जिससे पहले झटके के साथ ही भूचाल ढीला पड़ने लगा। श्यामा ऐसी सीधी नजर से उसे देखती रही, जैसे उसे समझ न आ रहा हो कि वह कौन है, कहां है, और जो व्यक्ति उसका चेहरा अपने चेहरे के पास लाकर बात कर रहा है, वह क्या चाहता है, क्या कर रहा है। हाथ में लेने पर जैसा बेजान उसका हाथ लगा था, कुछ वैसा ही बेजान उसका चेहरा भी लग रहा था। कुछ क्षण उसी तरह रुके रहने के बाद उसने अपना हाथ हटा लिया। श्यामा फिर भी उसी तरह अपने अचम्भे में

लात और लगा दी। कुत्ते का विरोध फिर भी शान्त नहीं हुआ।

गाय और भैंसें शायद मालिक के लौटने की गन्ध पाकर ही उस तरफ बढ़ आई थीं। उन्होंने बहुत सधे ढंग से चलते हुए नाली के उस तख्ते को पार कर लिया जिसे खपरैल तक आने से पहले उन दोनों ने बहुत डरते-डरते और मुश्किल से अपना संतुलन बनाए रखकर पार किया था। अब फिर से जाट युवक के सामने उस तख्ते से गुजरकर जाने का संकोच ही शायद श्यामा को खपरैल से आगे बढ़ने से रोक रहा था। एक कदम आगे जाने के बाद श्यामा के हाथ के दबाव से उसे भी रुक जाना पड़ा।

'क्या बात है ?' उसने आहिस्ता से पूछा लिया, 'अभी कुछ देर रुककर चलने का मन है क्या ?'

श्यामा कोठरी की तरफ देख रही थी, जहां एक चारपाई पर फटा मालू बिछा था। उसकी आंखों में फिर वही भाव नजर आ रहा था, जैसे कि उसे अपने वहां होने का होश ही न हो। इसके अलावा अन्दर के किसी दर्द की हलकी-सी छाया भी थी उनमें। वह कुछ छणों के लिए कहीं और किसी और परिस्थिति में पहुंच गई लगती थी। उसकी बात से चौंककर उसने आंखें कोठरी की तरफ से हटा लीं और अपने को समेटती हुई बोली, 'नहीं, चल रहे हैं।'

'चाहो तो चाय की एक-एक प्याली पीकर भी चल सकते हैं।''

'नहीं। मुझे बिटिया की चिंता है। ज्यादा देर हो जाने से वह रोने लगती है और ...।'

वह जानता था बिटिया का जिक्र वह ऐसे ही बीच में ले आई है। यह भी उसके सुरक्षा के उपायों में से एक था। पहले भी दो-एक बार, ऐसे ही आकस्मिक ढंग से उस प्रकरण को उठाकर उसने उसे अपनी तात्कालिक मनःस्थिति को छिपाने का प्रयत्न करते देखा था।

जाट युवक ने दूसरी कोठरी भी खोल दी थी। उधर से आकर वह अब अपने पशुओं को उसके अन्दर को हांक रहा था। उन दोनों को असमंजस में खड़े देखकर वह दूर से बोला, 'बैठना हो तो चलकर कोठरी में बैठ जाइए। मैं अभी अंगीठी सुलगाता हूं। आग के पास बैठने से कपड़े भी कुछ तो सूख ही जाएंगे।'

उसने श्यामा की तरफ देख लिया। श्यामा की आंखें एक भैंस के मुंह से गिरते जुगाली के झाग पर रुकी थीं। सोच उनमें फिर घिरी आ रही थी। उस सोच की काई को तोड़ती वह आगे बढ़ गई, 'आओ, चलें।'

पर पशुओं को रास्ता देने के लिए उन्हें फिर भी रुके रहना पड़ा। एक-एक करके गाय और भैंसें उनके सामने से निकल गईं। उनके [illegible]

'तुम्हें अफसोस तो नहीं हो रहा ?'
'किस चीज के लिए ?'
'इस तरह बाहर आने के लिए ?'
'नहीं।'
'पर तुम्हारी आवाज कुछ अजीब लग रही है।'
श्यामा के गले से हलका-सा स्वर सुनाई दिया। कहा उसने कुछ नहीं। वे उसी तरह चलते रहे। श्यामा का भीगा शरीर फिसलने से बचते हुए उससे टकरा भी गया, तो जैसे वह नहीं जान पाई।
'तुम कुछ सोच रही हो, नहीं ?' वह फिर बोला।
'नहीं तो।' श्यामा ने खोएपन से निकलने की कोशिश की।
'लग रहा है।'
'शायद सोच रही थी, पर पता नहीं क्या।'
'यह बात बिलकुल तय है ?'
'कौन-सी ?'
'वापस जाने की।'
श्यामा का स्वर लटक गया, 'हां, तय ही है।'
'मतलब कल-परसों ही चली जाओगी ?'
'हां, इसी के आसपास।'
'मैं अगर कहूं कि उतना तूल मत दो उस बात को ?'
श्यामा चुप रही। कोई भाव था, जो उसकी आंखों से उसकी नाक की नोक पर आकर अटक गया था।
'जवाब नहीं दिया तुमने ?' वह उसकी तरफ देखता रहा।
'उस घर में मैं अब और नहीं रह सकती।'
भीगी जमीन पर रास्ता टटोलकर चलते पैरों की हलकी आवाज। हवा से सरकंडों में उठती लहर। कहीं, पता नहीं किस चीज की डुबकी। गुड़ुप गुप् गुप्।
'तब तो तुमसे दो-एक बार ही मुलाकात होगी अब।' वह श्यामा की तरफ नहीं देख रहा था।
'जिस दिन तक हूं यहां, पढ़ने आती रहूंगी।'
'पढ़ने की बात तो गलत है, खैर···।'
'क्यों ?'
'वह तुम भी जानती हो।'
'यह तो नहीं कि इस बीच कुछ सीखा ही नहीं मैंने। सारी पढ़ाई किताबों तक नहीं होती।'

अपने को तैयार करने तक ही रही, निश्चय में नहीं बदल सकी।

वह पूरी-पूरी शाम घर पर रहा, पर ज्यादातर कमरों में या बाहर के पक्के दालान में टहलता रहा। खिड़की के कांच से छनकर आता धूप का टुकड़ा, या मेजपोश के कोने में चाय की प्याली का दाग, इन पर नजर पड़ने से कुछ देर के लिए पांव रुकते थे, फिर उसी तरह चलते जाने की मजबूरी महसूस होने लगती थी। कोई चीज थी, जिससे दूर-दूर जाता हुआ भी वह उसी के दायरे में घूम रहा था।

दो दिन पहले के वे क्षण बांहों में ताजा हो आते थे। सील-भरे झुटपुटे में ऊंची उठती वह आवाज, टर्र् टुक् टर्र् टुक् टर्र् टुक्। बांहों में कसे श्यामा के शरीर को लेकर एक-साथ विरोध और आत्म-समर्पण की अनुभूति, उसे परे हटाने के लिए उसके कंधों तक आए श्यामा के हाथ और होंठों के दबाव के नीचे श्यामा की लम्बी खिंचती सांसें। वह सब कुछ उसके साथ-साथ टहल रहा था। उंगली थामकर चलते बच्चों की तरह। उसकी बांहों से अपने को छुड़ाकर श्यामा, डरकर चलने की तरह कंटीले तारों की तरफ बढ़ गई थी। इस बार तारों को पार करने में उसे कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि साड़ी जांघों के किस हिस्से तक ऊंची उठ गई है, इसकी उसने चिन्ता नहीं की, बिजली का खंभा बहुत पास होने से उसकी रोशनी ने उन मांसल गोलाइयों में अपनी चमक भर दी थी। सड़क पर आकर श्यामा उसके कहे शब्दों की उपेक्षा करती चुपचाप चलती रही, जब तक कि वह दोराहा नहीं आ गया, जहां से एक रास्ता कच्ची मकानियत की तरफ जाता था, दूसरा प्रोफेसर मल्होत्रा के घर की तरफ। वहां पहुंचकर दोनों के पैर अपने-आप रुक गए। वह जानता था श्यामा का रुकना दूसरे रास्ते में जाने के लिए है, फिर भी उसने कोशिश की कि वह पहले उसके यहां चली चले। कपड़े थोड़ा सूख जाएं, तभी लौटकर जाए; पर श्यामा ने आंखें मूंदकर सिर हिला दिया, 'नहीं, पहले ही बहुत देर हो गई है।'

'प्रोफेसर मल्होत्रा अगर पूछेंगे कि इतना भीग कैसे गईं?'

'उनका मुंह है मुझसे कुछ भी पूछने का?'

श्यामा से अलग होकर घर की तरफ आते हुए एक जगह वह मुश्किल से अपने को फिसलने से बचा पाया, नहीं तो एक खुदी हुई नींव में आठ फुट नीचे जा गिरा होता। इस पर उसने मुंह में एक बड़ी-सी गाली दे ली, जाने अपने को, श्यामा को या खुदी हुई नींव को। घर पहुंचने पर पता चला कि पीछे से प्रोफेसर मल्होत्रा आए थे और श्यामा के लिए छाता छोड़कर चले गए हैं।

दोनों दिन बीच-बीच में पानी बरसता रहा, जिससे गीले दालान में

व्यवहार से वह यह भी अन्दाजा लगा सकेगा कि उन्हें लेकर श्यामा ने जो बात कही थी, वह क्या उसी तरह, उसी रूप में, उतनी ही सच थी? ऐसा तो नहीं था कि दूसरे को दहलीज तक लाकर, अपने को दहलीज से बाहर खींचने के लिए उकसाकर, फिर उसे दोषी ठहराने लगना उसका स्वभाव ही हो? उस एक ही शाम में कितनी तरह के उतार-चढ़ाव श्यामा के व्यवहार में नजर आए थे। फिर भी हर बार उसने उस सबको अपनी एक-तरफा परिस्थिति बनाए रखना चाहा था। वह एकतरफापन वास्तविकता ही थी उसकी, या जिम्मेदारी से बचने के लिए ओढ़ा गया लबादा?

दो बजे के बाद कोई क्लास नहीं थी, फिर भी चार बजे तक वह कालेज में रुका रहा। नये टाइम-टेबल से लेकर फुटबाल के मैच तक ऐसी-ऐसी चीजों में दिलचस्पी लेता रहा, जिनमें कभी दिलचस्पी नहीं लेता था। दिनों के बाद कालेज की कैंटीन में अकेले चाय पीते हुए अपना अकेलापन उसे अकेलेपन की तरह महसूस हुआ। उन दिनों की याद आई जब एक ही खाली पीरियड में लता और वह दोनों वहां आते थे और अलग-अलग मेजों पर बैठकर चाय पिया करते थे। उस तरह अजनबी बनकर बैठने की आत्मीयता मन को गुदगुदाती रहती थी। बीच में लता कभी आंखों से मुसकरा भी देती थी, पर वह अपने को बिलकुल गम्भीर बनाए रखता था। कैंटीन से बाहर भी उस दिन कई बार, कई जगह उसे लता की याद आई। खास तौर से कालेज छोड़ने से पहले आखिरी दिनों के उसके बीमार चेहरे की। उसी चेहरे के साथ वह एक नये घर में नयी जिन्दगी की शुरुआत करने चली गई थी। पता नहीं अब भी उसका चेहरा वैसा ही था या बदलकर बिलकुल और तरह का हो गया था।

बहुत तरह से इधर-उधर वक्त काटने के बाद भी वह पांच बजे से पहले घर पहुंच गया। अंधेरा होने से पहले वह प्रोफेसर मल्होत्रा के यहां नहीं जाना चाहता था, इसलिए बीच का समय काटने के लिए पुरानी चिट्ठियों की फाइलें लेकर बैठ गया। बीते हुए क्षण, बीते हुए लोग। बहुत पुरानी मोहरें। पहचाने हुए अक्षर, जो अब पहचान से बाहर चले गए थे। कोनों से मैले कागज। याददाश्त पर जोर देने की कोशिश, यह हवाला किस चीज का है?

काफी चिट्ठियां सरसरी तौर से पलटकर वह उदास मन से एक के अतीत में से गुजर रहा था, जब बाहर आहट सुनाई दे गई। आहट परिचित थी। पैरों की आवाज के अलावा साड़ी की वह फड़फड़ाहट जो श्यामा के आने का पता दिया करती थी। उसने फाइल बन्द कर दी, लेकिन उठकर बाहर नहीं गया। हवा से हिलते खिड़की के पर्दे को देखता बैठा

और चल देना था।

'मैं उस दिन के बाद आ नहीं सकी, क्योंकि···।' 'क्योंकि' पर थोड़ी देर रुकी रहने के बाद श्यामा ने हलके-से घूंट से बात की पूर्ति कर ली।

'मुझे तभी लग गया था तुम नहीं आओगी।'

'दो दिन बहुत-कुछ सोचती रही हूं।'

'क्यों ?'

'अपनी ही वजह से, क्योंकि मेरे व्यवहार में जरूर कुछ ऐसा रहा होगा, जिससे तुमने···।'

'मैं उस बात के लिए शरमिन्दा हूं उसी वक्त से।'

श्यामा की आंखों में कोई चीज चुभ-सी गई, 'मैं इसी चीज से डर रही थी।' वह चुपचाप उसे देखता रहा, फिर अपने हाथ की आधी खाली प्याली को देखने लगा।

श्यामा जैसे बात पूरी कर चुकी थी, मगर उसकी खामोशी देखकर उसे दोहराने के लिए मजबूर होना पड़ा, 'तुम्हें लगा होगा कि मैंने जान-बूझकर·· जान-बूझकर मैंने तुम्हें ओछा करने की कोशिश की है।'

'तुम्हारी तरफ से यह बात नहीं लगी थी मुझे। जो बात लगी थी, वह बिलकुल दूसरी थी।' श्यामा की आंखें उसकी तरफ उठी रहीं।

'लगा था कि तुम एक साथ दो मनःस्थितियों में जी रही हो। उनमें से एक तुम्हें दूसरी को स्वीकार नहीं करने देती। इसलिए तुम्हारी कोशिश अपनी उस दूसरी मनःस्थिति को ही ओछा करने की थी।'

श्यामा ने आहिस्ता से प्याली रख दी और ढिले भाव से आंखें मूंद लीं, 'तुम जैसा चाहो सोच सकते हो, लेकिन···।'

'मैं जानता था, तुम्हें यह बात सुनने में अच्छी नहीं लगेगी। अगर तुम यहां न आती, मैं तुमसे मिलने वहां आता, तो शायद यह कहने का मौक़ा ही न आता। तब तुम अधिक मानसिक सुविधा के साथ यहां से जा सकतीं।'

श्यामा ने आंखें खोल लीं, 'तुम्हारा मतलब है कि मेरे उकसाने से ही तुमने·· ?' और उसका भाव छलछलाते आंसुओं को रोकने का हो गया।

उसे गुस्सा भी आया, सहानुभूति भी हुई। श्यामा का प्रयत्न उसे ठगने का था या अपने-आप को। वह आसानी से आगे कहने की बात नहीं सोच पाया। घड़ी की टिक-टिक की तरह उसे अपनी एक-एक सांस समय का ताल देती लगी, 'मैं यह नहीं कहता कि जिम्मेदारी सिर्फ तुम्हारी थी' पता नहीं कितने लंबे वकफे के बाद उसने कहा, 'जितनी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है, उससे मैं इंकार नहीं करता; लेकिन इतना फिर भी कह सकता

करता। मेरे लिए और किसी तरह से जीना अब सम्भव ही नहीं रहा। मैं आज भी उसे अपने सामने जीवित देखना चाहती हूं। उसकी मृत्यु सचमुच मुझसे स्वीकार नहीं होती।'

अब वह अपनी छलछलाई आंखों को रोक नहीं सकी। आंसू उसके गालों पर बह आए। रूमाल से मुंह साफ करके वह आंखें झपकती कुछ देर चुप रही, फिर बोली, 'हो सकता है किसी दिन मैं उबर जाऊं इस सबसे, मगर साढ़े तीन साल से जिस तरह मेरे अंदर यह चीज और-और गहरी जड़ पकड़ती गई है, उससे विश्वास नहीं होता। मैं लोगों के बीच उठती-बैठती हूं, हंसती-बात करती हूं, तो भी उस आदमी की खामोश नजर से अपने को देखती रहती हूं। आगे पढ़ने की मेरी जिद का कारण भी शायद यही है कि उसे मेरी शिक्षा से सन्तोष नहीं था। वह डेढ़ साल भी मेरे साथ जिया नहीं था, सिर्फ मुझे झेलता रहा था। तुम ऐसे आदमी के लिए क्या कहोगे जो कभी खुश दिखाई न दे, फिर भी कभी डांटे नहीं, कभी शिकायत मुंह पर न लाए? वह इतना चुप रहता था कि कभी मुझे किसी के साथ देख भी लेता कुछ करते, तो शायद दूसरी तरफ मुंह कर लेता और मैं इस उदासीनता के लिए उसे न तब क्षमा कर सकती थी, न आज कर सकती हूं। उस दिन रहंट से चलते हुए तुमने पूछा था, मैं उतनी खामोश क्यों हूं। मैं उस वक्त भी देव को अपने साथ लेकर चल रही थी। इसके अलावा एक और बात भी थी। मुझे वहां उन कोठरियों के पास से निकलते हुए, अंदर बिछी चारपाई को देखते हुए, एक बहुत पहले की पढ़ी कहानी याद आ रही थी। प्रीतो! तुमने पढ़ी है?'

उसने सिर हिला दिया। कृशन चन्दर की काफी रूमानी कहानी थी वह। पूरे चांद की रात और गाड़ी का सफर। एक बूढ़ा जाट जिसके चेहरे पर गहरे घावों के निशान हैं। एक गाल के घाव अंग्रेजी के अक्षर 'वी' की तरह और दूसरे के एक क्रास की तरह। प्रीतो उस जाट की पत्नी थी। एक मात्र स्त्री, जिससे उसने जीवन में प्रेम किया था। ब्याह के बाद प्रीतो चार दिन के लिए अपने मायके गई, तो वह भी उसके पीछे वहां जा पहुंचा। रात को उसने देखा कि प्रीतो उसके पास से उठकर कहीं बाहर जा रही है। वह भी चुपचाप उसके पीछे-पीछे चल दिया। कितने ही खेत लांघकर एक पहाड़ी की ओट में प्रीतो जहां पहुंची, वह एक कुआं था। कुएं के पास बेरी का एक झाड़ था। पीछे एक कच्चा घर था, जिसका दरवाजा आधा खुला था। जाट ने देखा प्रीतो अन्दर एक आदमी से प्रेम कर रही है। उस आदमी के कहने से वह अंधेरी कोठरी से पानी लाने अन्दर गई, तो जाट ने कृपाण निकालकर उस आदमी का सिर काट दिया और चुपचाप वापस

सिर्फ अपने को ठगने का एक वहाना है। देव अब नहीं है, इसलिए उसे लेकर कुछ भी कहना-सोचना बेकार है। यह भी जानती हूं कि उसके बाद उसकी वजह से जिन लोगों की जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लिए हूं, उन्हें मेरे सुख-दुःख से कोई मतलब नहीं है। मतलब है, तो सिर्फ उन पैसों से जो हर महीने मैं उन्हें भेजती हूं। पैसे वक्त से पहुंच जाएं तो महीने के बाकी उन-तीस दिन शायद उन्हें मेरी याद भी नहीं आती। कुछ महीने पहले मैंने बीजी को लिखा था कि मैं बहुत अकेली महसूस करती हूं, इसलिए पूना का घर छोड़कर वे लोग यहीं मेरे पास आ रहे, पर उन्हें शायद लगा कि घर मेरे नाम होने से मैं उसे बेचने का बहाना ढूंढ़ रही हूं। बहुत बार लिखने पर वे सिर्फ सीमा की एक महीने की छुट्टी काटने मेरे पास आईं, कि पहले देख लें, यहां रहकर उन्हें कैसा लगता है। वह एक महीना भी पता नहीं किस मुश्किल से उन्होंने मेरे पास बिताया। सीमा तो पहले दिन से ही कहने लगी थी कि ऐसी मनहूस जगह पर वह हरगिज नहीं रह सकती। मुझे लगा कि वह घर से ही यह बात सोचकर चली थी। जिस दिन वे लोग चली गईं, मैं अकेले में खूब रोई। लगा, जैसे उस दिन दूसरी बार देव की मृत्यु हुई हो, मन में विद्रोह भी उठा कि मैं क्यों उन लोगों के लिए यह सब कर रही हूं? क्यों उन्हीं की तरह मैं भी सिर्फ अपने लिए नहीं जी सकती? फिर यह सोचकर अपने को समझा लिया कि मैं जो भी कर रही हूं, उन लोगों के लिए नहीं, अपने लिए कर रही हूं। देव ने डेढ़ साल में सिर्फ एक बार, एक ही चीज मुझसे चाही थी। वह भी मरते समय कि मैं उसके बाद इन दोनों का ध्यान रखूं, खास तौर से सीमा का, जब तक कि उसकी शादी न हो जाए। अपनी छोटी बहन से उसे बहुत प्यार था। शायद मुझसे उसकी उदासीनता की एक वजह यह भी थी कि मैं उसकी छोटी बहन जैसी नहीं थी। एक बार उसने कहा भी था कि लड़कियों को सीमा की तरह जीती-जागती होना चाहिए मेरी तरह बुझी-बुझी नहीं।'

हवा के झोंके से खिड़की का एक किवाड़ झटके से बन्द हुआ, फिर खुल गया। पर्दा किवाड़ और सलाखों के बीच उलझकर मुक्त हुआ, तो इस तरह ऊपर को तैर गया कि कमरा सहसा नंगा लगने लगा। सड़क, पेड़, साइकिल पर जाता एक लड़का, सब-कुछ कमरे का हिस्सा बन गया। मगर कुछ क्षण बाद ही पर्दे के सलाखों से चिपक जाने से कमरा फिर बाहर से अलग होकर अपने में ढक गया। पल्लू कंधे से नीचे सरक आने से श्यामा के सफेद ब्लाउज में उठती सांसें गिनी जा सकती थीं। वह तीन दिन पहले की तरह उस समय भी अपने शरीर को भूल-सी गई थी। तिपाई पर रखी चाय की खाली प्याली में आंखों से कुछ खोजती वह बात करती रही, 'देव

तो मैं पहले तो कुछ क्षण दुविधा में रही, फिर एकदम पथरा गई। दो दिन तक मेरे यहां न आने का कारण भी यही था। मैं नहीं समझ पा रही थी कि मैं किस तरह अपने को तुम्हारे सामने स्पष्ट कर सकूंगी, क्योंकि तुमने मेरे बारे में जो सोचा, वह मेरे उस व्यवहार के कारण ही सोचा होगा, जो देव को अपने साथ देखने की जरूरत ने मेरे अन्दर ला दिया था। मैं उस समय बारिश में भीगती हुई बहुत-कुछ एक स्त्री, एक युवा स्त्री की तरह चल रही थी, इस ओर से मैं अनजान नहीं हूं, परन्तु जिसके लिए मैं स्त्री की तरह व्यवहार कर रही थी, वह मेरे साथ नहीं था और जो मेरे साथ था, उसके मन में पैदा हुई गलतफहमी के लिए मैं उसी को कैसे जिम्मेदार ठहरा सकती हूं ? तुमसे मैंने रूखे ढंग से बात की थी जरूर, लेकिन ग्लानि मुझे अपने-आप से हुई थी। मैंने क्यों इस बात का ध्यान नहीं रखा कि तुम्हारे साथ मैंने जो भी या जितना भी सम्बन्ध माना हो, तुमसे मैंने उस की स्वीकृति नहीं ली और उस स्थिति में पुरुष होने के नाते तुम मुझे केवल एक स्त्री के रूप में देख सकते हो ? इसलिए तुम्हारे साथ चलते हुए मुझे अपने को उतनी ढील देने का कोई अधिकार नहीं था। इसी ग्लानि के मारे मैं दो दिन तुम्हारे सामने नहीं आ सकी, लेकिन दूसरी ओर मेरे लिए यह भी सम्भव नहीं था कि बिना तुमसे मिले और यह सब कहे, यहां से चली जाऊं।'

बोलना शुरू करके जिस तरह वह लगातार बोलती गई, उसी तरह चुप हो जाने के बाद काफी देर तक चुप बनी रही, शायद अब वह उसके बोलने की आशा कर रही थी, लेकिन वह जो महसूस कर रहा था, उसे शब्दों तो क्या, विचारों के घेरे में भी ठीक से नहीं बांध पा रहा था। श्यामा ने जो कुछ कहा था, उसने उसके मन की उदासी को और गहरा दिया था, परन्तु वह उदासी ज्यादा श्यामा को लेकर थी या अपने-आप को ? श्यामा के लिए उसके मन में जो भाव था, वह सहानुभूति और दया से आगे एक आक्रोश का था। ऐसी क्या चीज थी, जिसके कारण वह साढ़े तीन साल पहले के अपने जीवन से इस बुरी तरह चिपकी थी कि आज का जीवन उसके लिए कुछ अर्थ रखता था, तो केवल उसी सन्दर्भ में ? और वह चिपकना उसके जीवन की सचाई थी या सचाई से बचने का एक हठ-भरा उपाय ? वह नहीं सोच पा रहा था कि श्यामा के उस सारे संघर्ष में वह स्वयं कहां पर है। क्या वह सचमुच उससे अपना एक तरह का सम्बन्ध मानती थी या वह भी एक उपाय ही था, जो केवल एक अनुपस्थिति को अपनी उपस्थिति से भर सकता था ?

बीच की चुप्पी काफी अखरने लगी, तो उसने आहिस्ता से पूछ लिया,

'तो ?'

'मुझे लगता है, मैं कहीं तुम्हें चोट पहुंचाकर जा रही हूं।'

'यह कैसे ?'

'पता नहीं, पर लगता है मुझे।'

उसके गले से एक रूखी-सी आवाज निकली, 'यह गलत है।'

□□

श्यामा ने अविश्वास की नजर से उसे देख लिया, 'एक काम कर सकते हो ?'

'क्या ?'

'तुम मुझे ··मेरा मतलव है, अगला स्टेशन यहां से कितनी दूर पड़ता है ?'

'अगला स्टेशन ?' श्यामा के हाथ से ढके अपने हाथ में उसे एक गर्म लहर उतरती महसूस हुई, 'नौ-दस मील पर है शायद, क्यों ?'

'गाड़ी वहां कितनी देर रुकती है ?'

'मुश्किल से दो या तीन मिनट।'

'यह नहीं हो सकता कि··· ?'

वह हंस दिया, 'तुम चाहती हो मैं तुम्हें वहां मिलूं ?'

श्यामा की आंखों में शिकायत भर गई, 'हंसने की वात नहीं थी यह।'

'हंसने की न सही, पर वचपने की तो है ही।'

श्यामा ने हाथ हटा लिया और उठने की तैयारी में अपने को सहेजने लगी, 'मुझे पता है, मैं कई वार वचपने की वातें सोचती हूं।'

वौछार रुक गई थी, पर वाहर हवा में काफी सीलन थी। श्यामा कुर्सी से उठकर विना उसकी तरफ देखे दरवाजे तक गई, कुछ देर इस तरह वांह वाहर को फैलाए रही जैसे कि वौछार की वजह से ही उसे इतनी देर वहां रुकना पड़ा हो और उसके पास लौट आई, 'अच्छा···।'

वह भी उठ खड़ा हुआ, 'जा रही हो ?'

'हां।'

वह उसके साथ वाहर निकल आया। गीला दालान और उसके वाद का कच्चा हिस्सा उन्होंने चुपचाप पार किया। श्यामा जिस तरह चल रही थी, उससे लगता था कि वह किसी तरह जल्दी से उस घर का गेट पार कर जाना चाहती है, मगर गेट से निकलकर सड़क पर आते ही उसके पांव रुक गए। 'तो··· ?'

'अभी मुलाकात होगी तुमसे ?'

अकेले होने का विश्वास दिलाने के लिए। जैसे जिस अंधेरे में टिकट-कलेक्टर और कुली जाकर गुम हो गए थे, उसमें से अब उनकी जगह कोई भी निकल-कर आ सकता था। उसे जानने वाले सब चेहरे जैसे अंधेरे की उस दीवार के पीछे से उसे देख रहे थे। बड़ी-बड़ी आंखों वाला एक दुबला जर्द चेहरा अंधेरे से बाहर आने को सबसे ज्यादा कसमसा रहा था। वह उस चेहरे से ध्यान हटाने के लिए बार-बार घड़ी में वक्त देख लेता था। गाड़ी के आने में अब भी एक घंटा बाकी था।

यह खयाल आने से कि वह एक घंटे से लगातार टहल रहा है, उसे एकाएक थकान महसूस होने लगी। वह जाकर सबसे नजदीक की बेंच पर पसर गया। बेंच के पास ही एक लैम्प था, जिसके शीशे पर धुएं और मौसम ने कई-एक आकृतियां बना दी थीं। वह बेंच की बांह पर सिर रखकर लेट गया। मैले चौकोर शीशे पर उभरी आकृतियों में उसे कई-कई शक्लें नजर आने लगीं। यह उसकी हमेशा की आदत थी। सड़क से गुजरती गाड़ियों के नम्बर जोड़ना और कहीं कोई दाग नजर आते ही उसके सिर-मुंह-पैर निकालने लगना। लैम्प का चौकोर शीशा एक स्क्रीन था और उस पर दिखाई देतीं तीन आकृतियां। पहली दुबली-पतली आकृति लता की थी। दूसरी स्वस्थ आकृति श्यामा की और तीसरी? वह एक बुड्ढा कमजोर आदमी था, जो घुटनों के बल वहां गिरा हुआ था। वह आदमी वहां क्यों था? शेष दोनों आकृतियों को अपनी बेबसी दिखाकर वह उनसे क्या पाना चाहता था?

तीनों आकृतियां सपाट थीं। गोलाइयां उनमें नहीं थीं। आकाश एक काले पोस्टकार्ड की तरह था। पोस्टकार्ड पर लैंप की तसवीर थी। तसवीर में कुछ और तसवीरें। एक के अन्दर दूसरी। बुड्ढा कमजोर आदमी एक लाज से दोहरी लड़की में बदल गया था। लड़की चेहरा हाथों में छिपाकर किसी तरह अपने को दूसरों की नजरों से बचाए रखना चाहती थी। पास की दोनों आकृतियां उसे घूर रही थीं। इनमें एक वह खुद था। दूसरी आकृति एक लम्बे-ऊंचे आदमी की थी। उसे वह नहीं पहचानता था। पर वह आदमी काफी नाराज नजर आ रहा था और लाज से झुकी लड़की, वह अब लड़की नहीं थी, एक टूटा पेड़ था। पास की दोनों आकृ-तियां एक खस्ता इमारत की टूटी दीवारें थीं, जो पेड़ के ऊपर ढह आने को थीं।

उसने आंखें हटा लीं। गाड़ियों के नम्बर गिनने से भी इसी तरह मन ऊब जाता था। अपने को झकझोरकर वह इकाई-दहाई-सैकड़े के चक्कर से बाहर निकलता था। मगर थोड़ी ही देर में संख्या और आगे बढ़ जाती

'उतर क्यों आई ?' वह उसका बढ़ा हुआ हाथ अपने हाथ में लेकर बोला, 'गाड़ी अभी छूट जाएगी।'

'पहले ह्विसल तो देगी,' श्यामा ने उसके वहां होने की कृतज्ञता से उसका हाथ अपने हाथ में कस लिया, 'तुम्हें कितनी देर हो गई आए ?'

'दो घंटे।'

'दो घंटे ?' वह मुसकरा दिया, 'इतना समय तुमने इस अकेली जगह पर कैसे बिताया ?'

उसकी आंखें लैंप-पोस्ट से जा टकराईं। आकृतियों के कुहासे में लग रहा था जैसे कोई व्यक्ति आंखें मूंदकर सो रहा हो। उसने कहना चाहा कि कई बार तो आदमी अपनी पूरी जिंदगी एक अकेली जगह पर खड़ा रहकर काट लेता है, पर कहा उसने इतना ही, 'मुझे बल्कि काफी अच्छा लग रहा था यहां, क्योंकि जो लोग इस वक्त नजर आ रहे हैं, उनमें से कोई भी नहीं था।' श्यामा न जाने किस चीज से सिहर गई।

'क्यों ?' उसने श्यामा की डूबी आंखों में देखते हुए पूछ लिया।

श्यामा ने उत्तर नहीं दिया।

'कई बार यह चाह नहीं होती कि आदमी कई-कई घंटे बिलकुल अकेला रहे ?'

'इस समय भी ऐसा ही चाह रहे थे क्या ?' पर श्यामा यह सिर्फ कहने के लिए ही कह गई थी। सोच वह कुछ और ही रही थी।

'नहीं, इस समय गाड़ी का इन्तजार कर रहा था।'

'और अब भी शायद गाड़ी का इन्तजार ही कर रहे हो।'

दोनों हंस दिए। श्यामा उसकी एक-एक उंगली पर अंगूठा फिराती बोली, 'एक बात कहनी थी तुमसे।'

वह रोओं पर उसका सहलाना महसूस करता उसे देखता रहा।

'अगर किसी दिन मैं उबर सकी अपने-आप से, तो···।' गार्ड की ह्विसल के साथ ही इंजन की लम्बी चीख ने उसकी बात को बीच में काट दिया। श्यामा उसका हाथ छोड़कर जल्दी से पायदान की तरफ बढ़ गई, 'बेबी अंदर सोई है।' हड़बड़ी में ऊपर चढ़ते हुए उसकी चप्पल साड़ी में उलझ गई। उसने सहारा देकर उसे ठीक से दरवाजे तक पहुंचा दिया। दोनों तरफ के हत्थे पकड़कर श्यामा फिर उसी तरह खड़ी हो गई, जैसे गाड़ी आने के समय खड़ी थी। ब्रेक खुलने से पहले इंजन की लम्बी सूं-ऊं। फिर डब्बे की तरफ दौड़ते एक आदमी के पैरों की आवाज। पीछे से गुजरता मरियल चाय वाला। 'चाय गरेम, चाय।'

श्यामा अपनी बात कहने के लिए थोड़ा नीचे को झुक गई। वह सुनने

भीटर परे से सुनाई दे रही थी। सड़क के उस तरफ कुछ छोटे-छोटे घर थे और घरों से आगे जंगल। रात ज्यादा नहीं हुई थी, फिर भी उस इलाके में दिन जाने कब का बीत चुका था। आदमी जैसे वहां कोई था ही नहीं। सड़क थी, पेड़ थे और कच्ची ईंटों के कुछ ढांचे। आबादी के नाम पर जो कुछ था वह सब जैसे आखिरी गाड़ी के साथ वहां से चला गया था।

काफी देर खड़े रहने के बाद दूर से आती एक आवाज संनाद की तरह सड़क पर फैलती महसूस हुई। एक बोरों से लदा ट्रक था, जो उसके जोर-जोर से बांह हिलाने से उसके पास आकर रुक गया। ड्राइवर ने उसकी बात सुने बगैर उसके लिए दरवाजा खोल दिया। सीट के नीचे एक आदमी उकड़ू होकर सोया था। दरवाजा खुलते ही वह उठकर बैठ गया और अपनी खुली पगड़ी सिर पर लपेटने लगा। ट्रक में दाखिल होते हुए उसे लगा जैसे वह एक ऐसे संदूक में बन्द होने जा रहा हो जिसमें केशों की कसैली गन्ध से बचकर सांस ली ही न जा सकती हो लेकिन ट्रक स्टार्ट होने के बाद बाहर की हवा ने उस गन्ध को काफी हलका कर दिया।

नीचे लेटा सरदार अब उसके बराबर बैठ गया था। बिना पूछे कि उसे कहां तक जाना है उसने हाथ उसकी तरफ बढ़ा दिया, 'एक रुपया।' उसने भी बिना कुछ कहे एक रुपया निकालकर उस आदमी के हाथ पर रख दिया। थोड़ी देर में ड्राइवर एक फिल्मी गीत गाने लगा और साथ बैठे सरदार का सिर उसके कंधे पर झूल आया।

शहर से दो किलोमीटर बाहर चुंगी के पास उसे ट्रक छोड़ देना पड़ा। ड्राइवर और उसका साथी रात के बाकी घंटे वहीं एक ढाबे के अहाते में सोकर बिताने जा रहे थे। वह अहाता था ही इस काम के लिए। तीस-चालीस चारपाइयां इधर-उधर पड़ी थीं। कुछ पर लोग सोये थे, पर ज्यादा-तर खाली थीं। ढाबे के बाहर और भी कुछ ट्रक रुके हुए थे। जिन ड्राइवरों को वहां सोना होता था, वे एक-एक चवन्नी देकर अपने लिए चार-पाई ले लेते थे। जिन्हें सफर जारी रखना होता था, वे रुककर एक-एक प्याली चाय ले लेते थे और कुछ देर आपस में गाली-गलौज करके वहां से रवाना हो जाते थे।

'सो जाइए आप भी थोड़ी देर यहीं।' अपने वाले ड्राइवर के इस सुझाव पर उसने अहाते को गौर से देख लिया। पन्द्रह या पचीस वाट के बल्ब की मद्धिम रोशनी में बेडौल नजर आते बांस और मूंज के जालीदार चौखटे और उन पर लाशों की तरह बेबस पड़े शरीर। बिना पलस्तर की दीवारों पर बड़े-बड़े साए, एक विराट् जाल में फंसे अजदहों की तरह सांस लेते। सायों के आसपास परिंदों की तरह उड़ते पतिंगों के साए। पूरा

दवाव इतना वढ़ गया कि वह अपने को झटककर जाग गया। शरीर में एक सिहरन दौड़ गई, क्योंकि वह दवाव नींद के खुमार का भुलावा नहीं था। साथ बैठे पहलवान का हाथ उसकी जांघों के वीच आकर उसे मुट्ठी में कसे हुए था।

उसने रिक्शा-ड्राइवर से वहीं रिक्शा रोकने को कहा। रिक्शा-ड्राइवर गद्दी से उतरकर गुमसुम-सा खड़ा हो गया जैसे कि विना वताए उसे वजह का पता चल गया हो। पहलवान इस तरह सिर झुकाए रहा जैसे कि गहरी नींद में हो।

वात दोनों तरफ से नहीं हुई। उसने चुपचाप रिक्शा-ड्राइवर को पैसे निकालकर दे दिए। रिक्शा-ड्राइवर ने मुंह में हलके से कुछ वड़वड़ाकर आधे पैसे उसे लौटा दिए और एक झटके से रिक्शा मोड़कर वापस चुंगी की तरफ चल दिया। वह कुछ देर अपनी खामोशी के लिए अपने को कोसता खड़ा रहा, फिर पैदल आगे चलने लगा।

खाली सड़क। सपाट-सीधी। यहां-वहां शाम को वरसे पानी का गीलापन। उस पर से गुजरता अकेला अपना-आप। मन में कहीं एक डर। जैसे, कि कोई होने वाली दुर्घटना सौ कदम आगे-आगे चल रही हो।

वह जल्दी-जल्दी सड़क को नाप रहा था। पर साथ ही यह भी चाह रहा था कि सड़क जल्दी से समाप्त न हो। सड़क एकदम वेगानी थी, कुछ हद तक डरावनी भी। पर लौटकर जिस घर में जाना था, उसके साथ भी अपना कुछ सम्वन्ध उसे महसूस नहीं हो रहा था। घर में होने से सड़क पर होना ही वल्कि ज्यादा अच्छा था···पर सड़क पर होने से आगे? उसे एक साथ लता और श्यामा दोनों का ध्यान आया। जिस-जिस घर में वे दोनों थीं, क्या उसके साथ इस तरह जुड़ी थीं कि वहां से सड़क पर निकल आने की जरूरत कभी उन्हें महसूस ही न होती हो? पर सड़क पर निकल आने के वाद की जरूरत?

दूर से अपनी वस्ती की वत्तियां नजर आने लगीं, तो घर पहुंचने में थोड़ा और वक्त लेने के लिए वह सड़क के छोटे-से पुल पर रुक गया। वातावरण में दूर तक वही आवाज सुनाई दे रही थी। पुल के नीचे दूर तक फैले सैलाव में गूंजती मेंढकों की आवाज, पर आवाज सिर्फ मेंढकों की नहीं थी और भी न जाने किन-किन कीड़ों-पतिंगों की आवाजें उसमें मिली थीं। जैसे आकाश के नीचे विखरी जमीन और जमीन पर झुके आकाश के वीच की कोई छटपटाहट थी, जो उस आवाज में वाहर गूंज रही थी। उसे यह भी लग रहा था जैसे वह आवाज उस के अन्दर से भी सुनाई दे रही हो। सैलाव में चीखते सैकड़ों कीड़ों में से एक कीड़ा उसके अन्दर

आज उसकी भेंट नहीं होगी। जरा-सी भी देरी का बहाना उसके इन्तजार न करने का कारण बन जाएगा। एक अरसे के बाद एक-दूसरे के सामने पड़ने में जो उलझन होती, उससे कहीं वह स्वयं भी बचना चाहती थी। इसलिए कुमार का बचना चाहना अस्वाभाविक नहीं था।

टी सेंटर से निकलकर फुटपाथ की तरफ बढ़ते हुए पहले उसका मन हुआ कि सीधी घर लौट जाए, लेकिन स्टेशन की तरफ न मुड़कर उसके पांव अपने-आप उलटी तरफ को मुड़ आए थे। घर पर वह कहकर आई थी कि उसे लौटने में देर हो जाएगी। बहाना था कि उसकी एक पुरानी छात्रा ने, जो कोलाबा में रहती है, उसे खाने पर बुला रखा है। सोचा था कुमार के साथ जाकर एक बार उसका घर जरूर देखेगी। जो कुछ उससे मिलकर और बात करके नहीं जाना जा सकेगा, उसका बहुत कुछ पता उसके रहन-सहन और उन दिनों से आज के फर्क को देखकर लग सकेगा, मगर कुमार से भेंट न होने पर उतना वक्त किस तरह बिताना होगा, इसे लेकर उसने पहले नहीं सोचा था।

बारिश रुक चुकी थी। लग रहा था आसमान थोड़ी देर में खुल जाएगा। बैरीज, बार्बेलीज, नैपोली, हर रेस्तरां के सामने से गुजरते हुए भीड़ में घिरकर बैठने और चाय या काफी से शरीर को गर्मा लेने की सम्भावना उसका पल्ला थामती रही, पर वह बिना कहीं रुके मैरीन ड्राइव के चौड़े फुटपाथ तक चलती चली आई। वहां पहुंचकर भी बाईं ओर की दिशा उसने अनजाने में ही पकड़ ली। उस फुटपाथ का समुद्र को चीरती संकरी सड़क में बदल जाना उसकी मानसिक स्थिति के बहुत अनुकूल था। भीड़ के इतना पास इस तरह का अकेलापन ढूंढ़ने की कोशिश करने पर नहीं मिल सकता था।

नैरीमन पाइंट। चट्टानों के ऊपर से उमड़कर आते पानी की अनगिनत करवटें। सामने, उस तरफ से आती एक वैसी ही संकरी सड़क के पीछे, बड़े-बड़े बादबानों जैसी छितराए बादलों की टुकड़ियां। सिर के ऊपर उठी एक घनी टुकड़ी शाम को रात में गहराए दे रही थी। अगर वह टुकड़ी अचानक बरसने लगी? उस स्थिति में अकेलेपन में भी अपने भीगे शरीर को वह किस तरह सहन कर पाएगी?

एक बादल अन्दर घिरा था। उसी तरह छितराया-छितराया बादल। अन्दर की शाम बाहर की शाम से ज्यादा गहरी और उदास थी। उसके साए में कोई चीज कसक रही थी। क्यों यह कसक जब-तब एक जख्म की तरह उभर आती थी? और वह कसक ही नहीं थी। एक और अनुभूति भी थी, रोयों से गुजरते ब्लेड जैसी। वह किसी भी प्रयत्न से उस अनुभूति

आज उसकी भेंट नहीं होगी। जरा-सी भी देरी का वहाना उसके इन्तजार न करने का कारण वन जाएगा। एक अरसे के वाद एक-दूसरे के सामने पड़ने में जो उलझन होती, उससे कहीं वह स्वयं भी वचना चाहती थी। इसलिए कुमार का वचना चाहना अस्वाभाविक नहीं था।

टी सेंटर से निकलकर फुटपाथ की तरफ वढ़ते हुए पहले उसका मन हुआ कि सीधी घर लौट जाए, लेकिन स्टेशन की तरफ न मुड़कर उसके पांव अपने-आप उलटी तरफ को मुड़ आए थे। घर पर वह कहकर आई थी कि उसे लौटने में देर हो जाएगी। वहाना था कि उसकी एक पुरानी छात्रा ने, जो कोलावा में रहती है, उसे खाने पर वुला रखा है। सोचा था कुमार के साथ जाकर एक वार उसका घर जरूर देखेगी। जो कुछ उससे मिलकर और वात करके नहीं जाना जा सकेगा, उसका वहुत कुछ पता उसके रहन-सहन और उन दिनों से आज के फर्क को देखकर लग सकेगा, मगर कुमार से भेंट न होने पर उतना वक्त किस तरह विताना होगा, इसे लेकर उसने पहले नहीं सोचा था।

वारिश रुक चुकी थी। लग रहा था आसमान थोड़ी देर में खुल जाएगा। वैरीज, वाम्वेलीज, नैपोली, हर रेस्तरां के सामने से गुजरते हुए भीड़ में घिरकर वैठने और चाय या काफी से शरीर को गर्मा लेने की सम्भावना उसका पल्ला थामती रही, पर वह विना कहीं रुके मैरीन ड्राइव के चौड़े फुटपाथ तक चलती चली आई। वहां पहुंचकर भी वाईं ओर की दिशा उसने अनजाने में ही पकड़ ली। उस फुटपाथ का समुद्र को चीरती संकरी सड़क में वदल जाना उसकी मानसिक स्थिति के वहुत अनुकूल था। भीड़ के इतना पास इस तरह का अकेलापन ढूंढ़ने की कोशिश करने पर नहीं मिल सकता था।

नैरीमन पाइंट। चट्टानों के ऊपर से उमड़कर आते पानी की अनगिनत करवटें। सामने, उस तरफ से आती एक वैसी ही संकरी सड़क के पीछे, वड़े-वड़े वादवानों जैसी छितराए वादलों की टुकड़ियां। सिर के ऊपर उठी एक घनी टुकड़ी शाम को रात में गहराए दे रही थी। अगर वह टुकड़ी अचानक वरसने लगी ? उस स्थिति में अकेलेपन में भी अपने भीगे शरीर को वह किस तरह सहन कर पाएगी ?

एक वादल अन्दर घिरा था। उसी तरह छितराया-छितराया वादल। अन्दर की शाम वाहर की शाम से ज्यादा गहरी और उदास थी। उसके साए में कोई चीज कसक रही थी। क्यों यह कसक जव-तव एक जख्म की तरह उभर आती थी ? और वह कसक ही नहीं थी। एक और अनुभूति भी थी, रोयों से गुजरते ब्लेड जैसी। वह किसी भी प्रयत्न से उस अनुभूति

स्टेशन से चल दी थी। सिगनल से आगे निकलते हुए प्लेटफार्म के सिरे पर ठिठकी आकृति को जब आखिरी बार देखा था, तब प्लेटफार्म के मद्धिम लैम्पों ने उसे एक छाया में बदल दिया था। छाया दूर होती जा रही थी और लग रहा था कि गाड़ी बाहर की पटरियों पर न चलकर अपने अन्दर से गुजरकर जा रही है। उसकी बढ़ती रफ्तार अन्दर की ही किसी जमीन को कुचल रही है। जब छाया ओझल हो गई तो पायदान के हत्थों पर अपने हाथों की पकड़ उसे इतनी कमजोर लगने लगी कि उनके छूट जाने के डर से उसने पीछे हटकर दरवाजा बन्द कर लिया।

वह कुमार से कहकर आई थी कि उसे पत्र लिखेगी, लेकिन कई सप्ताह बीत जाने पर भी वह कोई पत्र नहीं लिख पाई। खाली कागज सामने रखते ही शब्दों के साथ मन का सम्बन्ध टूट जाता था। इतना कुछ एक साथ उमड़ने लगता था कि सिवाय सिर-दर्द के उस प्रयास का कुछ भी परिणाम नहीं निकलता था। कभी अपने से उचाट होकर वह बिला वजह बेबी को डांटने लगती थी। एकाध बार उसके गाल पर तमाचा भी मार दिया था। उसके बाद कितनी ही देर जैसे बेबी के हाथों दुखी होकर रोती रही थी, पर बाद में अपने पर गुस्सा आने से वह बेबी को दिन-भर पुचकारती और उसकी सब तरह की जिदें पूरी करती रही थी।

न जाने कौन-सा पक्षी था, जो रात को देर तक चिङ् चिङ् चिङ् करता रहता था। वह आवाज अंधेरे के अकेलेपन को और भी गहरा बना देती थी। जब वह पक्षी चुप कर जाता था, तो घर के पास से बहकर जाते ब्यास की आवाज पूरे बियाबान को घर की तरफ धकेलने लगती थी। उस बियाबान की दहशत में कितना कम सोचते हुए भी सोचने की शक्ति जड़ हो गई लगती थी। लगता था, चेतना का एक-एक रेशा निचुड़ गया है और जो शेष है, वह कुर्सी के बेंत पर भारी होकर लदे बोझ के सिवा कुछ नहीं है।

हवा का रुख क्वार्टर की तरफ होने पर दरिया की आवाज बहुत ऊंची हो आती थी। मुंडेर पर पांव फैलाए कुर्सी पर झूलती हुई वह उस आवाज से पानी के वेग का अनुमान लगाती थी। सोचती थी कि जो पानी अभी-अभी वहां पास से बहकर जा रहा था, वह मिनटों में ही किस-किस घाटी के पत्थरों पर से फिसलता हुआ कहां-से-कहां जा पहुंचा होगा। फिर वह बहुत पीछे जाकर मनाली या कुल्लू से उस पानी के साथ-साथ यात्रा करने लगती थी। पानी सुनसान रास्ते में ठोकरें खाता उसके क्वार्टर के पास पहुंचता और उसी तेजी से वहां से आगे निकल जाता। उसे खेद होता कि इतनी दूर तक साथ आने पर भी क्यों पानी के

बहती जाती, फिर वह क्षण आता जब हर धार समुद्र में जा मिलती। पर समुद्र की उदासीनता में अन्तर न आता। कुछ देर रेतीले किनारों से टकराने के बाद वह गहरे समुद्र की ओर बढ़ जाती। वहां उसका व्यक्तित्व इस तरह बिखर जाता कि उसे अपने अस्तित्व में ही सन्देह होने लगता। अब पहले से भी बड़े मगरमच्छों के जबड़े आस पास खुलने लगते। खुले-के-खुले रहकर उसे निगलने आने लगते। वह पल-भर आशंका से स्तम्भित रहती, पर इस अनुभूति से सन्तोष मिलता कि वह तो अब है ही नहीं है तो केवल छोटी-बड़ी मछलियां, जो आड़ी-तिरछी लकीरों की तरह पानी को काटती हुई उन जबड़ों के अन्दर खिंच जाती हैं। वह उन मछलियों मे से एक नही है। वह है, तो उनसे हटकर है, पर किसी तरफ को खिंची वह फिर भी जा रही है, उन जबड़ों की तरफ नहीं, तो और किस तरफ?

कमरे में बेबी कुनमुनाने लगती। वह उसांस के साथ कुर्सी से उठ पड़ती। बत्ती जलाकर टाइम-पीस में वक्त देखती। ढाई। पौने तीन। तीन।



एक मुद्दत के बाद उन दिनों उसने डायरी लिखनी शुरू की: दरिया के उस तरफ बहुत बड़ा लैंड-स्लाइड हुआ कल। पता नहीं कैसी हैं ये पहाड़ियां। इनका चरित्र मेरी समझ में नहीं आता। देखने में कितनी विशाल लगती हैं, कितनी स्थिर! पर एक लम्बी झड़ी से भुरभुराकर नीचे आ रहती हैं। जब भी कहीं लैंड-स्लाइड होता है, मन में न जाने कैसी आशंका भर जाती है। यहां से अपने कहीं जाने की बात नहीं होती, फिर भी सड़क टूट जाने से एक रुकावट-सी क्यों महसूस होने लगती है? मेरा ऐसा क्या है, जो यह सड़क कहीं से जोड़ती है? आज स्कूल के बाहर की पगडंडी पर काफी संभाल-संभालकर कदम रखती रही। डर लग रहा था कि गीली जमीन पता नहीं कब किस जगह से धसक जाए और— मेरी आंखों के सामने कभी लैंड-स्लाइड नहीं हुआ। ज्यादातर लैंड-स्लाइड आधी रात को ही होते हैं। गुपचुप। पता नहीं क्यों।

आज लेडी डाक्टर बत्रा ने आत्महत्या कर ली। उसके निर्जीव शरीर को देखकर भी बार-बार लैंड-स्लाइड की बात मन में आती रही। इतनी सुन्दर थी वह देखने में, इतनी हंसमुख भी थी, फिर उसने अचानक आत्महत्या क्यों कर ली?

जब तेज हवा चलती है, तो उसमें घुल-मिल जाने को मन करता है। बहते पानी में, चट्टानों पर, वर्षा में, घास पर, मिट्टी में, कोहरे के बीच,

होता। देव को बिखराव से चिढ़ थी, कोई छोटी-सी चीज भी यहां-वहां पड़ी दिख जाए, तो उसकी भवें तन जाती थीं, फिर भी एक संस्कार था उसका कि आदमी को किसी भी स्थिति में बेकाबू नहीं होना चाहिए। वह चुपचाप मुझे ताक लेता था और उस चीज को उठाकर ठिकाने से रख देता था। वह भी जानता था कि हम दोनों के बीच का सम्बन्ध केवल एक-दूसरे को सहने का है, फिर भी वह जितनी शान्ति और तटस्थता से यह किए जाता था, उससे ईर्ष्या होती थी। यह उसकी तटस्थता ही थी शायद जिससे उसका शारीरिक आवेग भी धीरे-धीरे ठंडा पड़ने लगा था। या शायद यह स्थिति दोनों ओर से ही थी, फिर भी एक सम्बन्ध था, पर क्या था वह सम्बन्ध? किस चीज का?

उपलब्धि का एक क्षण होता है। कब कैसे वह क्षण आएगा, कहा नहीं जा सकता। उसे लाने की योजना नहीं बनाई जा सकती। एक स्पन्दन के साथ वह क्षण बीत जाता है, परन्तु उपलब्धि उतने तक ही नहीं होती। उपलब्धि होती है एक निरन्तर बनी रहने वाली सुरक्षा की भावना के रूप में, परन्तु वह भावना देव से मुझे नहीं मिली। कैसे सोचा जा सकता है कि किसी और से वह मिल पाएगी?

एक क्षण के लिए विश्वास हुआ था, पर उसके बाद वह विश्वास बना क्यों नहीं रहा? तीन-चार बार उसके नाम पत्र लिखकर फाड़ दिए हैं, क्योंकि लिखने के साथ ही लगने लगता है कि वह एक झूठा प्रोत्साहन है। अपने लिए एक छोटा-सा झरोखा खोलने का स्वार्थ है। वह व्यक्ति मेरे लिए इसके सिवा कुछ भी नहीं हो सकता। झरोखे के रास्ते कुछ देर सांस ली जा सकती है, पर बाहर निकलने का मार्ग वह नहीं बन सकता। इसके अतिरिक्त, उसकी मुझसे जो अपेक्षा होगी, उसकी पूर्ति क्या मुझसे हो पाएगी?

एक अजीब छटपटाहट है। बिना अपने को किसी के सामने उड़ेले यह छटपटाहट शान्त नहीं होगी, पर क्या कोई भी ऐसा व्यक्ति है, जो बिना अपने किसी स्वार्थ के केवल मेरी बात सुनने के लिए ही मेरी बात सुने? सुनने का धीरज रखने या उसके लिए अपना समय देने का मूल्य मुझसे न चाहे?



कुछ दिनों बाद कुमार के नाम उसका एक पत्र डाक से निकल गया था।

पत्र को अन्तिम रूप देने में उसे दो दिन लगे थे। कितनी ही तरह से वह पत्र लिखा गया था, पर हर तरह किसी-न-किसी कारण से वह उसे

में पानी भर आता है। मैं जब भी उसे देखती हूं, मुझे तुम्हारी उस दुबली-पतली पीली-सी लड़की का ध्यान हो आता है और मैं तुम्हारे विषय में सोचने लगती हूं। उसकी मां मुझसे कई बार कह चुकी है कि मैं उसके लिए कोई लड़का खोज दूं। मैंने रंजू से दो-एक बार तुम्हारी बात की है। वह सुनकर मुसकरा देती है और कहती है, 'बहन जी, पंजाबी लोग तो गुंडे होते हैं।' मुझे उसकी बात पर हंसी आ जाती है। हिमाचल की विशेष सादगी और भोलापन इस लड़की में है। चाहती हूं तुम एक बार आकर इसे देख लो। हो सकता है तुम दोनों को एक-दूसरे में कुछ मिल जाए, पर यह केवल एक सुझाव ही है। तुम्हें अच्छा न लगे, तो भी एक बार आने में कोई बुराई नहीं। दशहरे के दिनों में यहां का मौसम बहुत अच्छा होता है। और कुछ नहीं, दो-एक दिन घूम ही लेना। हो सका, तो किसी की जीप लेकर कुल्लू का दशहरा देख आएंगे। दशहरे की छुट्टी तुम्हें होगी ही। इस विश्वास के साथ कि तुम बात को टालोगे नहीं, मैं तुम्हारा कार्यक्रम निश्चित किए दे रही हूं।

'शनिवार को तुम कश्मीर मेल से वहां से चलोगे। पठानकोट पहुंचने पर तुम्हें मंडी की बस तैयार मिलेगी। शाम को चार या पांच बजे तक तुम यहां पहुंच जाओगे। अगर किसी वजह से वह बस निकल जाए, तो उससे अगली किसी बस से आ सकते हो। आखिरी बस भी नौ बजे तक यहां पहुंच जाती है। मेरा चपरासी तुम्हें दोनों बसों पर देख लेगा। आना जरूर।'

□ □

छोटी-छोटी बूंदें पड़ने लगी थीं। नैरीमन पाइंट से बहुत दूर आगे एक नाव डगमगा रही थी। श्यामा एकटक उसे देख रही थी, जैसे कि नाव की सुरक्षा के साथ उसका कोई निजी वास्ता हो। किसी लहर के साथ नाव बहुत ऊंची उठ जाती, तो उसके होंठ खुल जाते और सांस तेज चलने लगती। वह उस ओर से आंख नहीं हटा पा रही थी, जैसे कि उसके आंख हटाने के साथ ही नाव के डूब जाने का अंदेशा हो।

एक मोटी-सी बूंद के नाक पर गिरने से वह अपने प्रति सचेत हो गई। देखा कि उस संकरी सड़क के छोर पर वह अब अकेली नहीं है, और भी कई लोग हैं वहां, जो बूंदें तेज होने के डर से अब लौटने जा रहे हैं। नाव उसी तरह डगमगा रही थी, शायद पहले से वह और दूर चली गई थी। बांहों को साड़ी के पल्लू में समेटकर वह भी वापस मैरीन ड्राइव की तरफ चल दी। दूर और पास की कई-मंजिला इमारतों के बीच मैरीन ड्राइव की पंच-मंजिला इमारतें काफी बौनी लग रही थीं। उन

के भाव से वे इस तरह वेलाग नजर आते थे, जैसे कि अपने निचले शरीर से उनका कोई सम्बन्ध ही न हो। उन्हें अपने से परे रखने के लिए उसने कोहनियों की सहायता ली। उससे काम नहीं चला, तो उन्हें एक-एक करके हाथ से थोड़ा धकेल दिया। मुंह में वह बुदबुदाई, 'आप ठीक से खड़े नहीं रह सकते ?' पर उनका भाव ऐसे वना रहा, जैसे बात उनसे न कही जाकर किसी और से कही गई हो। एल्फिस्टन रोड, दादर, लोअर परेल, महिम। उसने सोचा, बांद्रा उतरकर वह वहां से दूसरी गाड़ी ले लेगी। पर गाड़ी के स्टेशन पर रुकने के साथ ही तीनों आदमी वहां उतर गए और उसे पीछे की तरफ बैठने की जगह दिख गई।



अंधेरी। स्टेशन से निकलकर घर की तरफ चलते हुए भी श्यामा के अन्दर भिनभिनाहट बनी हुई थी। वह घर एक ऐसी जगह थी जहां पहुंचकर एक दूसरी तरह की घुटन मन में घिर आती थी। बीजी और सीमा, ये दोनों शुरू से ही उसके लिए अजनबी थीं। देव के जीवित रहते भी वह उन्हें नहीं अपना सकी थी। अब तो फ़ासले पर रहने से रिश्ता और धुंधला गया था। वे दोनों भी उसे एक सीधे सम्बन्ध से स्वीकार न करके बेबी के रिश्ते से ही स्वीकार करती थीं या एक और रिश्ते से जिसकी बात सोचते ही उसकी बेचैनी बढ़ने लगती थी। और बेबी, वह भी तो अब उन्हीं में से एक थी। वही चेहरा-मोहरा, वही स्वभाव, वैसी ही आदतें। अपनी जरूरत और आराम के सिवा किसी चीज से मतलब नहीं। मंडी में रहते वह फिर भी अपनी जान पड़ती थी, पर यहां आने के बाद से उन लोगों से इतनी घुल-मिल गई थी कि मां को मां की तरह समझती ही नहीं थी। हर वक्त बीजी के पास बैठना, बीजी के साथ खाना, बीजी के साथ घूमने जाना। शौक भी उन्हीं सब चीजों का जो बीजी को पसन्द आती थीं। रात को भी अक्सर वह बीजी के पास ही सो जाती थी। लगता था कि बीजी, सीमा और बेबी तीनों घर की मालकिन हैं, और वह एक जबर्दस्ती की मेहमान जो फालतू उन लोगों के बीच आकर टिकी है। वह किसी भी दिन वहां से चली जाए, तो तीनों में से किसी को इसका दुःख नहीं होगा। वे उसी तरह चटनी, अचार और मिर्च-भरे साग के साथ शाम की रोटी खाएंगी और शायद उसके बारे में आपस में बात भी नहीं करेंगी।

तीसरी मंजिल पर दाहिनी तरफ का फ्लैट। दो कमरे का। नौकरानी जेनी के दरवाजा खोलने के साथ ही उसे लगा कि घर में उस वक्त और कोई नहीं है। जेनी शाम को उतनी देर तक वहां नहीं रहती थी। सात



उस दिन सुबह नींद जल्दी खुल गई थी, बल्कि रात-भर ठीक से नींद आई ही नहीं थी। बीच में दो-तीन बार उठकर वह गुसलखाने में गई थी। बेबी को निश्चिंत सोते देखकर उसे ईर्ष्या भी हुई थी। उठने के साथ ही जो पहला विचार मन में आया, वह था, आज शनिवार है। रात को सोने से पहले भी उसने मन के कैलेंडर में वार बदल लेने की कोशिश की थी, पर बारह बज चुकने पर भी बाहर के घुप अंधेरे ने मन में नये दिन की शुरुआत नहीं होने दी थी। नया दिन रोशनदान पर कोहरे की तरह उभर आए हलके उजाले के साथ ही उसे अपने आने का विश्वास दिला पाया था। यह उजाला निश्चित रूप से शनिवार था, वह जिस दिन कुमार को कश्मीर मेल से पठानकोट आकर वहां से मंडी की बस पकड़नी थी।

कश्मीर मेल के पठानकोट पहुंचने में अभी समय था। कुमार उस समय अपनी सीट पर ऊंघ रहा था या चौकस आंखों से अंधेरे से उबरते खेतों को ताक रहा था। उसने उठकर चाय बनाई। हलके घूंटों में प्याली खाली करते हुए होंठों पर मुसकराहट आ गई। कुमार अगर सचमुच रंजू से मिलने की बात मन में लेकर आ रहा होगा, तो ··? उसे रंजू से एक बार बात तो कर ही लेनी चाहिए पर किस तरह किन शब्दों में क्या कहना ठीक होगा उसने ? सिदूरी के आने पर उसने अपने लिए टब में गरम पानी भरवा लिया। कहा कि और काम वह बाद में करे, पहले ठीक से कमरों की सफाई कर डाले।

'आज तो शनिवार है !' सिदूरी को उसके आग्रह से आश्चर्य हुआ। पूरे घर की सफाई वह सिर्फ इतवार को किया करती थी।

'मुझे पता है शनिवार है आज,' उसे बोलकर शनिवार का जिक्र करना अच्छा लगा, 'बाहर से मेहमान आ रहे हैं आज।'

'कौन मेहमान आ रहे हैं ?' सिदूरी की इस आदत से उसे बहुत चिढ़ होती थी। कोई भी बात हो, वह कौन, कब, कहां पूछे बिना नहीं रहती थी।

'कोई भी हैं। तुझसे जो कहा है, वह काम कर।'

'पूना से बड़ी बीबी आ रही हैं ?'

उस वक्त पूना के जिक्र से उसे गुस्सा आया, 'तुझे पहले यह बताना जरूरी है कि पूना से बड़ी बीबी आ रही हैं या बनारस से बड़े भैया ?'

सिदूरी पर गुस्से का कुछ असर नहीं हुआ। उसने बल्कि और पूछ लिया, 'आपके बड़े भाई बनारस में रहते हैं ?'

उसे हंसी आ गई, मेरे कोई बनारस में नहीं रहते। तू बातें करना छोड़

थी। वहीं से बीच का फासला बनाए रखते हुए उसने पूछ लिया, 'अकेले मियां-बीवी ही हैं, या कोई बच्चा-अच्चा भी होगा साथ में ?'

'कह नहीं सकती,' उसने तीखे झटके से सिंदूरी को देखकर आंखें हटा लीं, 'मैं उनके घर के लोगों से पहले मिली नहीं हूं।'

□□

पानी काफी गरम था। ऊंची पीठ वाले टीन के टब में शरीर को ढीला छोड़कर नहाने की आदत अब पुरानी हो चली थी। कितने ही साल पहले, उसके बचपन में, यह टब उनके घर में आया था। पिता को हर्निया की शिकायत थी, जिसके लिए उन्हें जल-चिकित्सा बतलाई गई थी। कुछ दिन इस्तेमाल होने के बाद वह वर्षों तक यूं ही पड़ा रहा था। एक दिन पुरानी बालटी में छेद हो जाने से उसने उसमें पानी भरवा लिया था और तब से, नयी बाल्टी आ जाने के बाद भी, गुसलखाने में उसकी जगह बनी रही थी।

टब इतना बड़ा नहीं था कि टांगें सीधी करके उसमें लेटा जा सके। उसमें शरीर को समाने के लिए जिस तरह से सिमटना पड़ता था, उससे घुटने उभरकर सामने आ जाते थे। दोनों ढीली बांहें नाभि के आस-पास आ मिलती थीं। आंखें मूंदकर वह कई-कई पल इस तरह समाधि की-सी स्थिति में बनी रहती थी। पानी की उष्णता शरीर के पोर-पोर से अन्दर उतरती जाती थी। शरीर में सांस के आने-जाने से पानी में होती हलचल नाभि के निचले हिस्से में हलकी थपकियां देती जान पड़ती थी। लगता था पानी की सतह पर बनते छोटे-छोटे बुलबुले शरीर के उसी हिस्से से उठकर आ रहे हैं। शरीर का अधिकांश भाग टब के तले से ऊंचा उठा रहने से अपना-आप एक नाव की तरह तैरता लगता। जरा-सा हिलने से ही नाव किसी-न-किसी किनारे से टकरा जाती। कई बार वह जान-बूझकर लम्बी-लम्बी सांसें लेती, जिससे नाव ज्यादा हिचकोले खाती और ज्यादा बार किनारों से रगड़ जाती। फिर अपने-आप पीठ से नीचे को सरकता जाता, टांगें पानी में और हलकी पड़कर ऊपर-ऊपर को उठती आतीं। लगता यह गर्भाशय में होने की-सी स्थिति ही शरीर के लिए सबसे स्वाभाविक है। जैसे उसकी सुविधा की सारी खोज गर्भाशय के अनुभव की ही खोज थी। वह अनुभव समाधि के रूप में हो या···उसे उन अधूरे क्षणों का स्मरण हो आता, जब देव के साथ लगभग वैसी ही शारीरिक स्थिति में वह पोर-पोर से एक वैसी ही उष्णता पा सकने की कामना से आतुर हो जाया करती थी, परन्तु शरीर तले से ऊपर उठकर हिलोरें लेने ही लगता कि देव का हांफता शरीर अपने बोझ से उसे दबा देता, या और नीचे डूबते

तक ?

इतने सारे लोगों को उसी दिन मिलने के लिए आना था। दो अध्यापिकाएं स्कूल से ही साथ चली आई थीं। रंजू और रमेश्वरी मेहता। कुआंरी होने से दोनों को दिन बिताने की समस्या रहती थी, शनिवार को विशेष रूप से। प्रायः हर शनिवार की दोपहर वे उन्हीं के यहां काटती थीं। उन लोगों की हो-हुल्लड़ और चाय पीने-पिलाने की व्यस्तता में उसका भी वक्त बीत जाता था, पर उस दिन सिर-दर्द का बहाना करके उसने उन लोगों से बचना चाहा था। रंजू उसका इरादा भांप गई थी, पर रमेश्वरी को ऐसी बतास उठ रही थी कि वह 'बहन जी को सिर-दर्द के साथ अकेली छोड़ने' को तैयार नहीं हुई थी, 'सच कहती हूं बहन जी, पहले तो रात को बारह-बारह बजे तक उसके कमरे की बत्ती जलती रहती थी। आधी रात को भी कोई केस आ जाता था, तो वह देखने निकल पड़ती थी, पर पिछले छह महीने से, जब से यह नया डाक्टर आया है, दुबे, तब से रात के नौ बजे ही उसके कमरे की बत्ती बुझने लगी थी। दिन में भी देखने में वह थकी-थकी-सी लगती। पूछने पर हंसकर कहती थी, 'आजकल एक नया तजरुबा कर रही हूं।' नया तजरुबा ! सिवाय एक तजरुबे के और कौन-सा था वह नया तजरुबा ?

बात लेडी डाक्टर बत्रा को लेकर ही थी। उसकी आकस्मिक मृत्यु से पहले सबको धक्का लगा था, दुख भी हुआ था। इतनी सुन्दर हंसमुख लड़की, शाम तक रोज की तरह अस्पताल में काम कर रही थी और सुबह उठने पर पता चला कि शरीर पर तेजाब छिड़कर उसने आत्महत्या कर ली। खबर सुनकर किसी से बात तक करते नहीं बना था, यही रमेश्वरी कितनी गुमसुम रही थी उस दिन ! पर दो-चार दिन गुजरने के बाद ही डाक्टर दुबे के साथ लेडी डाक्टर के सम्बन्ध को लेकर दबे-दबे चर्चा शुरू हो गई थी, जो अब तक मजाक की स्थिति में पहुंच गई थी, 'डाक्टर दुबे ने जो उसी दिन अस्पताल से तीन दिन की छुट्टी ले ली थी, वह किसलिए थी ? बेचारे को जो दुख हुआ, सो तो हुआ ही होगा, पर खास वजह क्या यही नहीं थी कि वह लोगों के सामने पड़ने से बचना चाहता था ? कोई उससे ऐसा-वैसा सवाल पूछ लेता, तो क्या जवाब देता बेचारा उसे ? सुना तो यह भी था कि वह त्यागपत्र देकर यहां से चले जाने की सोच रहा है, पर परसों देखा था, तो पहले से भी स्मार्ट सूट पहने घूम रहा था अस्पताल में। शायद अब नये रोमांस की तैयारी चल रही है। जो नयी डाक्टर आई है, उससे। मैं कहती हूं, अब तो शर्म करनी चाहिए उसे। वह बेचारी दो छोटे बच्चों की विधवा मां है। उसे भी कहीं कुछ हो-हवा गया, तो उसके

तक ?

इतने सारे लोगों को उसी दिन मिलने के लिए आना था। दो अध्यापिकाएं स्कूल से ही साथ चली आई थीं। रंजू और रमेश्वरी मेहता। कुआंरी होने से दोनों को दिन विताने की समस्या रहती थी, शनिवार को विशेष रूप से। प्रायः हर शनिवार की दोपहर वे उसी के यहां काटती थीं। उन लोगों की हो-हुल्लड़ और चाय पीने-पिलाने की व्यस्तता में उसका भी वक्त बीत जाता था, पर उस दिन सिर-दर्द का बहाना करके उसने उन लोगों से बचना चाहा था। रंजू उसका इरादा भांप गई थी, पर रमेश्वरी को ऐसी बतास उठ रही थी कि वह 'बहन जी को सिर-दर्द के साथ अकेली छोड़ने' को तैयार नहीं हुई थी, 'सच कहती हूं बहन जी, पहले तो रात को बारह-बारह बजे तक उसके कमरे की बत्ती जलती रहती थी। आधी रात को भी कोई केस आ जाता था, तो वह देखने निकल पड़ती थी, पर पिछले छह महीने से, जब से यह नया डाक्टर आया है, दुबे, तब से रात के नौ बजे ही उसके कमरे की बत्ती बुझने लगी थी। दिन में भी देखने में वह थकी-थकी-सी लगती। पूछने पर हंसकर कहती थी, 'आजकल एक नया तजरुबा कर रही हूं।' नया तजरुबा ! सिवाय एक तजरुबे के और कौन-सा था वह नया तजरुबा ?

बात लेडी डाक्टर बत्रा को लेकर ही थी। उसकी आकस्मिक मृत्यु से पहले सबको धक्का लगा था, दुख भी हुआ था। इतनी सुन्दर हंसमुख लड़की, शाम तक रोज की तरह अस्पताल में काम कर रही थी और सुबह उठने पर पता चला कि शरीर पर तेजाब छिड़कर उसने आत्महत्या कर ली। खबर सुनकर किसी से बात तक करते नहीं बना था, यही रमेश्वरी कितनी गुमसुम रही थी उस दिन ! पर दो-चार दिन गुजरने के बाद ही डाक्टर दुबे के साथ लेडी डाक्टर के सम्बन्ध को लेकर दबे-दबे चर्चा शुरू हो गई थी, जो अब तक मजाक की स्थिति में पहुंच गई थी, 'डाक्टर दुबे ने जो उसी दिन अस्पताल से तीन दिन की छुट्टी ले ली थी, वह किसलिए थी ? बेचारे को जो दुख हुआ, सो तो हुआ ही होगा, पर खास वजह क्या यही नहीं थी कि वह लोगों के सामने पड़ने से बचना चाहता था ? कोई उससे ऐसा-वैसा सवाल पूछ लेता, तो क्या जवाब देता बेचारा उसे ? सुना तो यह भी था कि वह त्यागपत्र देकर यहां से चले जाने की सोच रहा है, पर परसों देखा था, तो पहले से भी स्मार्ट सूट पहने घूम रहा था अस्पताल में। शायद अब नये रोमांस की तैयारी चल रही है। जो नयी डाक्टर आई है, उससे। मैं कहती हूं, अब तो शर्म करनी चाहिए उसे। वह बेचारी दो छोटे बच्चों की विधवा मां है। उसे भी कहीं कुछ हो-हवा गया, तो उसके

जवाब दे दे। पर रंजू और रमेश्वरी सामने थीं, इसलिए गुस्सा पी जाना ही बेहतर लगा उसे। रमेश्वरी की आंखों में उभर आई उत्सुकता कोई और रंगत ले, इससे पहले अपनी ओर से ही वह बताने लगी, 'कुछ लोगों के बाहर से आने की बात है आज। हमारे उनके कोई दोस्त हैं। लिखा है, कुल्लू जाते हुए रास्ते में एकाध दिन के लिए यहां रुकेंगे। शायद सोचते हों कि मिलकर नहीं जाएंगे, तो मुझे बुरा लगेगा कि उनके बाद इन लोगों ने मुंह दिखाना भी छोड़ दिया।'

'आपके पास ही ठहरेंगे ?' रमेश्वरी के स्वर में कुछ था जो उसे अखर गया। उसे यह भी लगा कि सवाल पूछते हुए उसने एक बार गहरी नजर से रंजू की तरफ देख लिया है। इतना ही नहीं, रंजू ने अपनी आंखों में उभर आई मुसकराहट से उसे उत्तर भी दिया है। उसका मन उन दोनों के प्रति वितृष्णा से भरने लगा। रंजू के प्रति विशेष रूप से, क्योंकि उसी के कारण वह रमेश्वरी का अपने यहां इतना आना-जाना स्वीकार करती थी। और यही वह लड़की थी, जिसकी सादगी और भोलेपन की प्रशंसा उसने कुमार से की थी। अच्छा ही था कि उसने इस लड़की से कुमार की चर्चा नहीं की। इसमें ऐसी विशेषता थी भी क्या कि कुमार-जैसे व्यक्ति के साथ इसके सम्बन्ध की बात सोची जा सकती ? कुमार सचमुच इसके बारे में जानना चाहे, तो वह सच-सच उसे बता देगी कि लड़की देखने में बुरी नहीं है, अपनी एक सादगी भी है उसमें, पर साथ में ऐसा ओछापन भी कि अपने पत्र में उसकी चर्चा करने के लिए बाद में उसे अफसोस होता रहा है।

'कह नहीं सकती,' स्वर में काफी उदासीनता लाकर उसने रमेश्वरी को उत्तर दिया, 'हो सकता है रेस्ट-हाउस या किसी होटल में उन्होंने अपना इन्तजाम कर रखा हो, पर अपनी तरफ से तो एक बार उनसे कहना ही होगा। इसीलिए मैंने पीछे का कमरा खुलवा दिया है। यहां ठहरना चाहेंगे, तो यहीं ठहर जाएंगे।'

रमेश्वरी इस विषय में कुरेदकर जानना चाहती तो उसे बुरा लगता, पर उसने बात को वहीं छोड़ दिया, यह भी उसे अच्छा नहीं लगा। क्या रमेश्वरी के मन में सचमुच संदेह का बीज था, जिसके कारण वह बिना और बात किए इस तरह चुप रह गई थी ?

रंजू और रमेश्वरी पांच-साढ़े पांच के बाद ही उसके यहां से जाया करती थीं। उस दिन सवा तीन के करीब उनका उठकर चल देना भी उसे स्वाभाविक नहीं लगा। जैसे उनके मन का संदेह ही था जिसने दो घंटे पहले उन्हें वहां से उठा दिया था, पर रमेश्वरी ने चलने की बात की, तो वह

मैंने चेयरमैन से बात कर ली है। उनका कहना है, बिल्डिंग-फंड में कम-से-कम सौ रुपया चंदा दे दें। मैंने कहा मुझे मंजूर है, पर वे बोले एक बार आपसे भी पूछ लेना जरूरी है।'

उन लोगों के जाते-न-जाते सनातन धर्म सभा और गोरक्षा समिति के अध्यक्ष बाबा जी 'एक विशेष अनुरोध करने' के लिए आ गए, 'परसों स्वामी गिरिजानन्द जी का भाषण रखा है हमने। मैदान में बड़ा शामियाना लगेगा। हम चाहते थे आप तो उस दिन आएं ही, अपने स्कूल की लड़कियों तथा अध्यापिकाओं से भी अधिक-से-अधिक संख्या में आने के लिए कह दें। इतना महत्त्वपूर्ण भाषण हो और सुनने के लिए सौ-पचास लोग ही एकत्रित हों, इसमें नगर का सम्मान नहीं रहता। हमने लड़कों के स्कूल में हेडमास्टर साहब से नोटिस निकलवा दिया है। एक नोटिस आप भी निकाल दें, तो…।'

उसे लग रहा था, एक-के-बाद-एक उन सब लोगों का आना एक षड्-यन्त्र है। जैसे सारे शहर को कुमार के आने की सूचना मिल गई थी और वे लोग जान-बूझकर बारी-बारी से उसके यहां चक्कर लगा रहे थे। बाबा जी जिस समय गए, तब तक घड़ी की सुइयां पांच और बारह पर पहुंच चुकी थीं। पठानकोट से पहली बस अड्डे पर आ चुकी होगी। उसने चपरासी को अड्डे पर भेजने की बात क्यों लिखी थी पत्र में? कुमार किसी भी रिक्शा वाले को उसका नाम बता देता, तो वह उसे सीधा यहां ले आता। उसके मन में हौल-सा उठने लगा कि अभी-अभी एक रिक्शा गेट के पास आकर रुकेगा और उसमें से उतरकर कुमार पगडंडी से नीचे आएगा। अगर उससे पहले कुछ और लोग मिलने आ गए, तो कुमार को कैसा लगेगा उन्हें देखकर। और वे लोग भी क्या सोचेंगे एक अपरिचित व्यक्ति के पीछे-पीछे चपरासी को बिस्तर-अटैची के साथ आते देखकर? उस वक्त किसी के चेहरे पर हलकी-सी भी मुसकराहट नजर आ गई, तो कितनी शर्म की बात होगी वह, उसके लिए भी और कुमार के लिए भी? कुमार के अन्दर आने के साथ ही वे लोग वहां से चलने की बात करने लगेंगे, और वह अभी कुमार से उसका हालचाल भी नहीं पूछ पाएगी, जब तक शहर में लोग लेडी डाक्टर वर्मा की जगह उसकी चर्चा कर रहे होंगे।

मिसेज सोहन सिंह ने चलते-चलते उसके अकेले जीवन से सहानुभूति प्रकट की थी, 'मुझे इस तरह अकेले रहना पड़े, तो मैं तो एकदम पागल हो जाऊं।' वह सहानुभूति उसे व्यंग्य की तरह चुभ गई थी। ऊपर से वह मुसकरा दी थी, पर अन्दर से पसीना-पसीना हो गई थी। मिसेज सोहन-सिंह को आज ही उसके अकेलेपन का ध्यान क्यों आया था?

की समेटी कई चीजें उसने इधर-उधर बिखरा दीं, 'जीतू, जीतू, तू मुझे जीने देगी या नहीं ?' वह माथा पकड़कर कुर्सी पर बैठ गई। उसकी आंखों से आंसू बहते देख बेबी का तूफान शान्त हो गया। वह उसे चूमकर और 'गुड नाइट' कहकर अपने बिस्तर में चली गई।

शाम गहरी हो गई थी। और पहली बस के बाद अब दूसरी बस आने का समय हो रहा था। उसकी आंखें एक आशा और आशंका के साथ बार-बार गेट की तरफ जाती थीं और किसी को न आते देखकर एक साथ निराश और निश्चिन्त हो रहती थीं। क्या सचमुच कुमार ने न आने का ही तय किया था ? पर ऐसा था, तो उसने उसे इसकी सूचना क्यों नहीं दी ? सूचना न देने का अर्थ था कि वह आ रहा था, पर आने का निश्चय करने पर क्या उसे स्वयं ही नहीं लिखना चाहिए था कि वह उसके ठहरने का प्रबन्ध किसी होटल में कर दे ? गलती उसकी अपनी थी। उसने कुमार को इतना समय भी तो नहीं दिया कि वह उसके पत्र का उत्तर दे सके। हो सकता है. अब आकर वह कहीं बाहर ठहरने का फैसला कर ले। नहीं तो वही उसे यहां की स्थिति समझा देगी। कह देगी कि उसका रात को यहां उसके क्वार्टर में रहना ठीक नहीं। बेहतर होगा कि वह रेस्ट हाउस में जगह का पता कर ले, या किसी होटल में जाकर पूछ ले। कल सुबह वह उसे खाने पर बुला सकती है। कुमार का मन देखेगी, तो सचमुच उसे रंजू से मिला देगी। इस तरह बात भी रह जाएगी और लोगों को टीका-टिप्पणी करने का मौका भी नहीं मिलेगा, लेकिन नहीं। रंजू जैसी लड़की से मिलने पर कुमार उसके विषय में मन में क्या सोचेगा ? वैसे भी वह रंजू को क्या कहकर अपने यहां बुलाएगी ? उसने किसी को भी कुमार से मिलने के लिए बुलाया, तो बाद में इसे लेकर तरह-तरह के सवाल नहीं पैदा होंगे ? लोगों को इतना ही पता चलना चाहिए कि कोई एक व्यक्ति आया था। घर-परिवार वाला व्यक्ति। परिवार साथ में नहीं था, इसलिए उसके यहां नहीं ठहरा। रात रेस्ट हाउस में काटकर चला गया।

शाम के और गहराकर अंधेरे में डूबने के साथ दूसरी बस का वक्त भी निकल गया, तो विचारों का यह ताना-बाना टूटने लगा। पठानकोट से आने वाली एक ही बस रहती थी अब। नौ बजे से पहले वह बस अड्डे पर नहीं पहुंचती थी। कुमार उस बस से आया, तो क्या वह उससे कह सकेगी कि वह उलटे पैरों वहां से रेस्ट हाउस में चला जाए ? यह उसका बहुत छोटापन नहीं होगा कि एक आदमी को बाहर से बुलाकर ठहरने के लिए उसेकिसी दूसरी जगह जाने को कहे ? और कुमार के सामने आ खड़े होने पर वह यह बात उससे कह भी पाएगी ? कहना जरूरी भी किसलिए था ?

जाती थी और आकाश में स्वर उभरते आते थे। ज्यों-ज्यों एकान्त बढ़ता जाता था, मन अपने-आप की कैद से निकालने के लिए मचलने लगता था, परन्तु उस समय वह सब रोज जैसा नहीं था। रात का जो रूप शरीर में भर आया था, वह रोज से कहीं अलग, कहीं गहरा था। उसमें एक अन्तरंगता थी, कोने में दुबककर आग तापने जैसी। अन्दर का एकान्त रोज की तरह का उदास अकेलापन नहीं, एक भरा-भरा-सा अनुभव था। समय गुजरता हुआ बाहर की ओर नहीं जा रहा था, अन्दर की ओर आ रहा था। और वह स्वयं भी जैसे समय के समानान्तर चल रही थी। अपने अन्दर की ओर, और अन्दर की ओर···।

अंधेरा होने तक लकड़ी की रेलिंग के सहारे खड़ी वह उसी तरह देखती रही। मन अंधेरे की परतों में दबता गया और वह चुपचाप उनके प्रति आत्म-समर्पण करती गई। आखिरी बस के आने में कुल एक-डेढ़ घंटा और था। कुमार के आने की तरह उसके आने के बाद का सब-कुछ भी जैसे अपने-आप निश्चित हो चुका था। उसमें अब अपनी ओर से प्रयत्न करने की कोई सम्भावना नहीं थी। जिस तरह बस को अड्डे पर पहुंचना था, उसी तरह कुमार को आकर एक निश्चित जगह पर बैठना, एक निश्चित ढंग से उसकी तरफ देखना और एक निश्चित सवाल से बातचीत शुरू करना था। उसके बाद भी जो कुछ होने को था, वह सब एकदम निश्चित था। उसे अब केवल उस प्रक्रिया में से गुजरना था।

'कैसी हो तुम ?' अपरिचित कमरे में भी अपरिचित महसूस न करने के लिए कुमार मसनद का सहारा ढूंढ़ेगा।

'कैसी लग रही हूं ?' खामोश अन्तराल में दोनों एक-दूसरे से आंखें हटाए रहेंगे। कुछ देर बाद वह पूछ लेगी, 'सफर कैसा रहा ?'

कुमार उसके स्वर की थाह लेता रूखे ढंग से मुसकरा देगा, 'ठीक ही था।'

'रास्ता काफी खराब है इन दिनों।'

'हां, बहुत खराब है।'

'सड़क बीच-बीच में टूटी होगी।'

'कई जगह से। पता नहीं किस तरह ये लोग गाड़ी निकालकर ले आते हैं।'

'भूख लगी है ?'

'नहीं।'

'रास्ते में कुछ खाया था ?'

'दिन में खाया था। बिटिया कहां है ?'

'मैं खाना ले आती हूं। खाकर आराम से सो रहो।'

'खाना ले आओ। सोना तो नींद आने पर ही होगा।' खाना खाते वक्त खाने के बारे में ही बात होगी, 'अच्छा बना है?'

'तुमने बनाया है?'

'नौकरानी ने। अच्छा बनाती है।'

'रात को छुट्टी कर जाती है?'

'सिर्फ शनिवार को। हफ्ते में एक दिन गांव जाती है।'

कुमार उसकी आंखों में देखेगा, 'इतवार को दिन-भर नहीं रहती है?'

'नहीं, दस बजे तक लौट आती है सुबह।'

खाना हो चुकने पर वह गम्भीर नजर से उसकी तरफ देखता रहेगा। वह साहस के साथ उसकी नजर का सामना करने की चेष्टा करेगी। 'आंखों से लगता है तुम्हें किसी चीज की परेशानी है।'

'परेशानी अपने-आप की ही है।'

'यानी?'

'अपने-आप से लड़ती रहती हूं बहुत, पर वश नहीं चलता।'

'पूना से चिट्ठी आती है?'

'आती है।'

'वे लोग फिर कभी यहां नहीं आई?'

'मैंने बुलाया ही नहीं। हर महीने कुछ पैसे भेज देती हूं। बस, इतना ही सम्बन्ध है।'

'उन्होंने भी नहीं बुलाया?'

'बुलाया है। दीवाली की छुट्टियों में, पर मैं जाऊंगी नहीं।'

'क्यों?'

'मन नहीं है। आपस में कोई चीज बांटने को नहीं। सिवाय बेबी के, और यह भी उतनी ज्यादा उन लोगों पर कि मुझे बिलकुल अपनी नहीं लगती। लगता है, एक जंगली जानवर है जिसे मेरे पास छोड़ दिया गया है। इतना ऊधम और तोड़-फोड़ करती है। पहले मैं कुछ नहीं कहती थी, पर लगा शायद इसी से बिगड़ती जा रही है। इधर आकर काफी पीटने लगी हूं। थप्पड़ खाकर डर जाती है, तो वह भी अच्छा नहीं लगता। चेहरा बिलकुल वीजी पर है। शायद इसीलिए मुझे इतना गुस्सा आता है इस पर।'

'पढ़ाई चल रही है?'

'नहीं, इरादा छोड़ दिया है। लगता है, स्कूल की नौकरी के सिवा

'मेरा यह बात करना अच्छा नहीं लग रहा ?'

'इन बातों से आदमी पहुंचता कहां है ?'

'अगर पहुंच पाती, तो बात ही करती ? जब शुरू-शुरू में तुमसे मिली थी, तो लगा था कि एक तो ऐसा व्यक्ति है, जिसके पास बैठकर बात की जा सकती है, पर बाद में लगने लगा कि तुम भी मुझे व्यक्ति के रूप में नहीं, एक साधन के रूप में ही देखते हो, जिससे तुम्हारी किसी अपेक्षा की पूर्ति हो सकती है। मैं स्वीकार करती हूं इससे मेरे अहं को चोट पहुंची थी, मुझे किसी के लिए भी केवल एक साधन हो रहने में बहुत हीनता अनुभव होती है। हो सकता है, देव के साथ मेरे सम्बन्ध में भी यही एक गांठ रही हो।'

कुमार सिर उठाएगा। आंखों में एक तीखा-सा भाव होगा, 'और तुम जब अपनी अपेक्षा की बात करती हो, तो दूसरा तुम्हारे लिए साधन नहीं हो जाता ?'

वह एकटक देखती रहेगी। वह बात जिसे सुनने से बचना चाहती थी, आखिर सुननी पड़ ही गई, 'यह सवाल मेरे मन में उठता है। इसलिए आज दूसरी तरह से सोचने की कोशिश करती हूं। मानकर चलना चाहती हूं कि कोई भी सम्बन्ध एक-साथ दो-दो अपेक्षाओं की, दोनों ओर की अलग-अलग अपेक्षाओं की पूर्ति से ही निभ सकता है। और ये अपेक्षाएं भी एक सीमा तक ही पूरी हो सकती हैं, क्योंकि हर व्यक्ति एक भरे-पूरे बाजार की तरह है जिसके सब-कुछ की तुम प्रशंसा कर सकते हो, पर वह सब कुछ तुम अपने लिए ले नहीं सकते। तुम उनमें से वही लो, जो तुम्हारे लिए सुन्दर और उपयोगी है, जिसे लेने की सामर्थ्य तुममें है और जिसे तुम्हें चुराकर, छीनकर या याचना के साथ नहीं लेना होगा। इसकी चिंता मत करो कि शेष कहां जाता है, कौन लेता है। इसी तरह वह व्यक्ति तुम्हारे सब-कुछ पर ताला लगाने की कोशिश करे, इस स्थिति को स्वीकार मत करो। जितने की उसे अपेक्षा है और जितना बिना किसी बाधा के तुम दे सकते हो, उतना उसे खुले मन से दो, और उसके लिए किसी तरह की कृतज्ञता मत चाहो। तुम्हारा बहुत कुछ यदि तुम्हीं तक रह जाता है कोई भी उसे ले सकने का अधिकारी तुम्हें नहीं मिलता, तो भी मन मसोसकर मत रहो। तुममें जो कुछ है, उसका मूल्य उसके लिए जा सकने के कारण ही नहीं है। उसका मूल्य उसके होने में है और उतने में ही उसकी सार्थकता है। न तुम किसी के लिए बाध्यता बनो और न किसी को अपने लिए बाध्यता बनने दो, पर इस तरह के व्यक्तिगत न्याय से जीना कहां तक सम्भव है ? सब लोग इस दृष्टि को स्वीकार करने लगें, तभी तो चल सकता है। अन्यथा

'नहीं, मतलब कोई एक नहीं। अब तो बिलकुल अधेड़ हो गई है, पर कुछ-न-कुछ उसके नाम के साथ अब भी जुड़ा ही रहता है। वैसे अब भी किसी-किसी दिन बहुत सुन्दर लगती है। रोज धुले हुए कपड़े पहनती है। कहती है, बहन जी, आपके सिवा और किसी के साथ मेरा गुजारा नहीं। पहले मैंने इसे स्कूल में माई के काम पर लगाया था, पर मैनेजमेंट के पास इसकी शिकायतें पहुंचने लगीं, तो इसे उस काम से हटाना पड़ा। कुछ दिन बेकार रहने के बाद फिर मेरे पास आकर रोने-धोने लगी, तो मैंने इसे खाना-वाना बनाने के लिए रख लिया। आज यह जानकर कि कोई मेहमान आ रहे हैं, वह जाना नहीं चाहती थी। शायद देखना चाहती थी कि बहन जी के पास आकर रहने वाले इस आदमी की शक्ल कैसी है। उसका बस चलता, तो वह मुझे यहां से भेज देती और खुद तुम्हारी सेवा करने के लिए यहां रह जाती।'

उसके हाथ पर कुमार के हाथ का दबाव बढ़ जाएगा। कुछ देर दोनों के बीच चुप्पी छाई रहेगी, 'कल दशहरा है।' कुछ देर बाद वह कहेगी।

'हां, है तो।'

'कुल्लू चलना चाहोगे?'

'तुमने जीप बुला रखी है?'

'अभी कहा नहीं, किसी से—हालांकि मिसेज सोहन सिंह आई भी थीं आज।'

'क्यों नहीं कहा?'

'इसलिए कि शायद तुम न चलना चाहो।'

'यह तुम कैसे जानती थीं?'

'मेरा खयाल था कि—।'

कुमार की उंगलियां उसकी उंगलियों में उलझ जाएंगी। वह अपनी उंगलियां उसके हाथ में ढीली छोड़ देगी। कुछ देर फिर कोई बात नहीं होगी।

'मैं क्या ?'

'देखो—।' तब तक उसका शरीर कुमार की बांहों में चला जाएगा और कुमार के होंठ उसके होंठों में आ मिलेंगे।

'मैंने तुम्हें इसलिए नहीं बुलाया था।' वह अपने होंठ परे हटाने की चेष्टा करेगी।

'तो किसलिए बुलाया था ?'

'मैंने बुलाया था इसलिए कि—।' उससे वाक्य पूरा नहीं हो पाएगा।

कुमार के शरीर ने तब तक नीचे आकर उसके शरीर को ढक दिया होगा। 'देखो फर्श ठंडा है।'

'बताओ क्यों बुलाया था—क्यों बुलाया था तुमने मुझे ?' कुमार शब्द दोहराता जाएगा। वह अपने को उससे परे छिटकने की कोशिश करेगी, पर कुमार के पागलपन के सामने कोई वश नहीं चल पाएगा उसका। बीच में कपड़ों का पर्दा हटाने के लिए कुमार के हाथ औंधा-सीधा प्रयत्न करते महसूस होंगे। वह उसकी कलाइयां पकड़कर उसे रोकने का हठ करेगी, पर तब तक उसका अस्तित्व एक पीड़ा, एक जलन में बदल चुका होगा। उसके मुंह से कुछ स्पष्ट-सी ध्वनियां निकलेंगी और कुमार के बढ़ आते शरीर को अपने शरीर में लेकर वह एक पूर्ति, एक तृप्ति की आकांक्षा में खो जाएगी, परन्तु वह तृप्ति तृप्ति होगी या निराशा ? अपना-आप उससे भर जाएगा या और खाली महसूस होगा ?

लकड़ी की रेलिंग हाथों के बोझ से चरमरा उठी। उसने अपने को संभाला। कमजोर-सी चीज पर इतना बोझ नहीं डालना चाहिए था उसे। अगर रेलिंग टूट जाती ?

रेलिंग से हाथ हटाकर आसपास के अंधेरे को उसने उचाट नजर से देख लिया। अंधेरा उतना गहरा नहीं था जितना कि उसे होना चाहिए था। नवमी की चांदनी में घुल-मिलकर उसमें जो फीकापन आ गया था, उससे वह बाहर से अपनी ओर झांकता-सा लग रहा था। जैसे उस अंधेरे ने सभी कुछ देखा था। उसकी कामना, उसकी छटपटाहट, उसका आत्म-समर्पण। शरीर जड़ हो रहा था। वह जड़ता अपराध की थी या अपूर्ति की ? एक धड़कन थी जो उसके शरीर के बाहर हर चीज में प्रतिध्वनित हो रही थी। बरामदे की तख्तियों में। रेलिंग के खंभे में। क्या उन्हीं क्षणों हलका-सा भूचाल भी आया था ? नहीं तो ऐसा लगा क्यों था ?



रात को आईने में एक छाया देखी थी। बरामदे और कमरे बीच वक्त का एहसास काफी पहले खो गया था। कुमार आखिरी बस से भी

खुलने पर देखा कि एक पतिंगा, इतना बड़ा कि पहले कभी नहीं देखा था, मोमबत्ती से सटकर मरा पड़ा है और मोमबत्ती का मोम चू-चूकर उसके ऊपर आ रहा है। मन में एक ऐसा आतंक भर गया कि वह सिर ऊंचा करके मोमबत्ती को बुझाने का हौसला भी न कर सकी। कोशिश से आती-जाती सांस के साथ उस तरफ से करवट बदलकर लेट रही।



दो छोटे-छोटे हाथों के हिलाकर जगाने से श्यामा झटके से उठकर बैठ गई। बेबी की आंखें शरारत से चमक रही थीं, 'चलो ममी, बीजी उधर खाने के लिए बुला रही हैं।'

हर बार आंख खोलने पर वह बिस्तर, वह पलंग, वह कमरा और अपना वहां होना असंगत-सा लगता था। दूर की रोशनियों के हलके सफेद दाग लिए अंधेरा, घुल-घुलकर फटे स्याह परदे जैसा। उस अंधेरे का अपना कोई भाव, कोई व्यक्तित्व नहीं था। आत्मीयता या अकेलेपन का कोई सम्बन्ध उसमें स्थापित नहीं हो पाता था। उसने उठकर बत्ती जलाई, तो बेबी कमरे से बाहर जाने लगी। उसने उसे रोककर पास बुला लिया। मंडी के घर में बेबी के हर वक्त अपने से चिपकी रहने से उलझन होती थी, लेकिन यहां—यहां तो वह लड़की उसे अपनी कुछ समझती ही नहीं थी।

'आज कहां होकर आई है मेरी बिटिया?' उसने अतिरिक्त दुलार के साथ बेबी को अपने से सटा लेना चाहा। बेबी कसमसाई, तो वह उसे और भी साथ भींचकर उसके होंठों, गालों और माथे को चूमने लगी 'बड़ी मां के साथ पिक्चर देखने गई थी?'

बेबी ने अपने को उससे छुड़ा लिया, 'पिक्चर देखने नहीं गई थी।'

'तो कहां गई थी? पार्क में?'

'पहले पार्क में फिर एक अंकल के घर में।'

उसने पूछना चाहा, किस अंकल के घर में, लेकिन बेबी से यह पूछना बेतुकी बात लगी।

'पार्क में क्या-क्या खेल खेला?'

'लकड़ी के हाथी पर चढ़ी। रेलगाड़ी में बैठी।'

'और?'

'और कुछ नहीं किया।' बेबी दरवाजे से बाहर निकल गई। खाना ठंडा हो जाएगा। तुम जल्दी आ जाओ उधर।'

बेबी का चेहरा ही नहीं, स्वर भी अब बीजी जैसा होता जा रहा था। बीजी के साथ जिस तरह वह घुल-मिलकर रहती थी, उससे सन्देह होता

'बेबी !'

बेबी ने दांत भींचकर बांहें झटके से छुड़ा लीं और रोती हुई जाकर बीजी से चिपट गई।

'तू मां है या दुश्मन है उसकी ?'

दो जोड़ी एक-सी गोल-गोल आंखें, एक-से फैले-फैले नथुने। प्लेट अब भी बेबी के एक हाथ में थी, जिससे दाल-चावल नीचे गिर रहे थे। श्यामा ने बीजी को जवाब न देकर बेबी से ही फिर कहा, 'इधर आकर प्लेट मेज पर रख दे।'

'नहीं रखूंगी, नहीं रखूंगी।' बेबी ने प्लेट ऊंची उठा दी।

'मैं कह रही हूं रख दे प्लेट, नहीं तो—।'

पर उसके इतना कहते-न-कहते प्लेट जमीन पर आ रही। दाल-चावल और चीनी के टुकड़े कमरे में बिखर गए। श्यामा ने बेबी को बांह से पकड़कर अपनी तरफ खींच लिया, पर बीजी की आंखों से देखकर कि वे उसे अपनी तरफ झपटने जा रही हैं, उसने खुद ही उसे वापस धकेल दिया। बीजी के मुंह से सुना, 'और डांट उसे। नये सेट की प्लेट तुड़वा दी।'

'देखो, बीजी,' श्यामा को लगा वह क्षण आ पहुंचा है जब उस परिवार के साथ उसका सम्बन्ध अन्तिम रूप से निर्धारित हो जाना चाहिए, 'जिस तरह यह लड़की दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही है, उससे मुझे तो लगता है कि—'

'यह यहां दाखिल हो ही रही है अब। जितना बिगड़ी है, वहां रहकर ही बिगड़ी है। छह महीने यहां रह ले मेरे पास फिर देखना इसे।'

श्यामा को अपनी सांस अटकती महसूस हुई। यह उसे बेबी को छोड़कर वहां से चले जाने का संकेत था क्या ? उस परिवार के लिए कुछ भी करके क्या वह कभी उनकी अपनी हो सकती थी ? मैं 'चली जाऊंगी जल्दी ही,' वह बोली, 'लेकिन यह पता नहीं कि इसे भी सुधरने के लिए यहां छोड़ जाऊंगी या नहीं।'

बीजी को एहसास हो गया था कि उनके स्वर में कुछ ज्यादा ही चोट थी। वे चुप रहकर फर्श पर बिखरे सामान को सहेजने लगीं। बेबी इधर-उधर से टुकड़े उठाकर उन्हें देखने लगी।

श्यामा भी कुछ देर चुप खड़ी देखती रही। फिर, 'मुझे भूख नहीं है, आप लोग खाना खा लीजिए।' कहकर उस कमरे से चली आई।

पर इधर आकर पलंग पर बैठी ही थी कि बीजी सामने आ खड़ी हुईं 'वहां से खाकर नहीं आई तो खा क्यों नहीं लेती थोड़ा-सा ?'

उसे याद आया कि उसे तो खाना खाकर आना था बाहर से। बीजी

पास रहेगी। मंडी में अपने अकेले जीवन को सहना उसे मुश्किल लग रहा था, इसलिए अपनी ओर से ही यह इच्छा प्रकट की थी उसने। उन लोगों को कई लम्बे-लम्बे पत्र उसने लिखे थे, जिनमें अनुरोध किया था कि पूना का घर बेचकर वे लोग अगर और कहीं भी चलकर रहने को तैयार हों तो वहां उनके पास आ सकती है। पूना के घर में वह नहीं रहना चाहती थी, क्योंकि उस घर के साथ ऐसा बहुत कुछ जुड़ा था, जिससे बचने के लिए ही वह वहां से इतनी दूर चली गई थी। उस घर में देव की मृत्यु का दिन उसके लिए उसी तरह ठहरा हुआ था। वह हर दिन, हर क्षण, की उस लगातार मृत्यु की साक्षी होकर नहीं रह सकती थी। एक पत्र में उसने बेबी की समस्या का भी जिक्र किया था। उसके साथ रहकर बेबी को जो अकेलापन ढोना पड़ रहा था, उससे वह उसे बचाना चाहती थी, 'लड़की अब बड़ी हो रही है और मुझे लगता है कि मेरे अलावा और भी दो-एक अपने लोग उसके पास होने चाहिए।' पूना के सिवाय और कहीं भी वह नौकरी कर सकती थी। सीमा की नौकरी लग जाने पर साथ रहने से वे लोग काफी बचत भी कर सकती थीं, 'हमें अब पैसा इसलिए भी बचना चाहिए कि थोड़े दिनों में सीमा के ब्याह के लिए पैसे की जरूरत पड़ेगी।' पर जितनी आसानी से उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया, उसकी उसे आशा नहीं थी। बीजी ने लिखा था कि पूना का घर बेचकर उन्हें पच्चीस हजार तक मिल सकते हैं। इतने में बम्बई में एक छोटा-सा फ्लैट खरीदा जा सकता है। पूना के बाद बम्बई को छोड़कर और किसी शहर में जाने के लिए सीमा तैयार नहीं थी। और शहरों का 'रहन-सहन' उसे पसंद नहीं था। उसका यह भी खयाल था कि उसे जितनी अच्छी नौकरी बम्बई में मिल सकती है, और कहीं नहीं मिल सकती, लेकिन अब पूना का मकान बेचा गया, तो उसके कुल अट्ठारह हजार वसूल हुए। कहा गया कि जगह पुरानी होने से कोई अच्छा खरीदार नहीं मिला। यह भी कि बम्बई में जिस फ्लैट की बात हुई है, वह पैंतीस हजार से कम में नहीं मिलेगा। वह उन दिनों अपने वातावरण में इस तरह ऊबी हुई थी कि जल्दी-से-जल्दी बाकी रकम का प्रबन्ध कर देना उसे आवश्यक जान पड़ा। उसके पास बैंक में जितने रुपये थे, वे सब उसने निकलवा लिए। प्राविडेंट फंड से जितना कर्ज लिया जा सकता था, वह भी ले लिया, फिर भी उसे दो हजार का कर्ज प्रोफेसर मल्होत्रा से और लेना पड़ा। किसी तरह रकम पूरी करके भेज दी, तो बम्बई में जाकर रहने का विचार मन पर भारी पड़ने लगा। क्या उसके लगकर पैसे का प्रबन्ध करने के मूल में एक और

असुरक्षा के भाव से देखने लगती थीं, उससे उसे सुख भी मिलता था, सहानुभूति भी होती थी।

'तब जो जैसे करना होगा सोच लेंगे। आपसे पूरी बात किए बिना तो जाऊंगी नहीं।'

बीजी के चेहरे से लगा कि उन्होंने इसे एक निश्चित उत्तर की तरह लिया है। पल-भर उसे देखती रहकर वे बाहर की तरफ मुड़ गईं।

'सीमा आ जाए, तो आज ही बात कर लेंगे। तुझे जाना ही है, तो कोई तुझे रोक तो सकता नहीं।'

'सीमा के आने तक मैं जागती नहीं रहूंगी। वह तो बारह बजे भी लौटकर आ सकती है और एक बजे भी।' बीजी रुक गईं। 'मैं उसे अपनी जगह अपने लिए जिम्मेदार समझती हूं, तुझे अपनी जगह। न कभी उससे लौटकर आने का वक्त पूछती हूं, न तुझसे परदेस में अकेली रहने की वजह।'

'मेरी वहां नौकरी है।' श्यामा की सांस फिर अटकने लगी।

'उसकी भी नौकरी है।'

'उसकी कितने बजे से कितने बजे तक की शिफ्ट है आजकल? घर से सुबह ग्यारह बजे जाती है।'

'मुझे इतना ही पता है खाना खाने का भी कोई वक्त नहीं रहता उसका। टेलीफोन आपरेटरों की कई बार पूरी-पूरी रात की भी ड्यूटी लगती है।'

'मैं आपसे आजकल की बात पूछ रही थी।'

'तू जिस तरह शक करती है उस पर, अगर मैं भी उसी तरह शक करने लगूं तो—।'

'किस पर शक? मुझ पर?'

'मैंने यह नहीं कहा। मैं कभी किसी पर शक नहीं करती।' कहती हुई बीजी बाहर निकल गईं। श्यामा गुस्से में उठी, पर उनके पीछे जाने की जगह उसने जोर से कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया।

□□

वैसा अंधेरा वहां भी नहीं मिलता था, यहां भी नहीं। एकदम गाढ़ा अंधेरा, जिसमें खुली आंखों को कुछ भी नजर न आए। छत, फर्श और दीवारें सभी कुछ अंधेरे का बना महसूस हो। पलंग की पटियां और पाये भी ठोस अंधेरे के बने जान पड़ें। करवट बदलने पर मैट्रेस और तकियों के अन्दर भी अंधेरा भरा लगे। जहां कहीं हाथ का दबाव पड़े, वहीं अंधेरे को महसूस किया जा सके। अपने अन्दर भी एक-एक सांस के साथ

असुरक्षा के भाव से देखने लगती थीं, उससे उसे सुख भी मिलता था, सहानुभूति भी होती थी।

'तब जो जैसे करना होगा सोच लेंगे। आपसे पूरी बात किए बिना तो जाऊंगी नहीं।'

बीजी के चेहरे से लगा कि उन्होंने इसे एक निश्चित उत्तर की तरह लिया है। पल-भर उसे देखती रहकर वे बाहर की तरफ मुड़ गईं।

'सीमा आ जाए, तो आज ही बात कर लेंगे। तुझे जाना ही है, तो कोई तुझे रोक तो सकता नहीं।'

'सीमा के आने तक मैं जागती नहीं रहूंगी। वह तो बारह बजे भी लौटकर आ सकती है और एक बजे भी।' बीजी रुक गईं। 'मैं उसे अपनी जगह अपने लिए जिम्मेदार समझती हूं, तुझे अपनी जगह। न कभी उससे लौटकर आने का वक्त पूछती हूं, न तुझसे परदेस में अकेली रहने की वजह।'

'मेरी वहां नौकरी है।' श्यामा की सांस फिर अटकने लगी।

'उसकी भी नौकरी है।'

'उसकी कितने बजे से कितने बजे तक की शिफ्ट है आजकल? घर से सुबह ग्यारह बजे जाती है।'

'मुझे इतना ही पता है खाना खाने का भी कोई वक्त नहीं रहता उसका। टेलीफोन आपरेटरों की कई बार पूरी-पूरी रात की भी ड्यूटी लगती है।'

'मैं आपसे आजकल की बात पूछ रही थी।'

'तू जिस तरह शक करती है उस पर, अगर मैं भी उसी तरह शक करने लगूं तो—।'

'किस पर शक? मुझ पर?'

'मैंने यह नहीं कहा। मैं कभी किसी पर शक नहीं करती।' कहती हुई बीजी बाहर निकल गईं। श्यामा गुस्से में उठी, पर उनके पीछे जाने की जगह उसने जोर से कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया।

□ □

वैसा अंधेरा वहां भी नहीं मिलता था, यहां भी नहीं। एकदम गाढ़ा अंधेरा, जिसमें खुली आंखों को कुछ भी नजर न आए। छत, फर्श और दीवारें सभी कुछ अंधेरे का बना महसूस हो। पलंग की पटियां और पाये भी ठोस अंधेरे के बने जान पड़ें। करवट बदलने पर मैट्रेस और तकियों के अन्दर भी अंधेरा भरा लगे। जहां कहीं हाथ का दबाव पड़े, वहीं अंधेरे को महसूस किया जा सके। अपने अन्दर भी एक-एक सांस के साथ

कतरा रहे हो ?' देव ने बात को हंसकर टाल दिया और फोटोग्राफर से कहा, 'भई जल्दी से खींच-खिचा लो जो भी तसवीर खींचनी है। मैं चाय की प्याली बीच में छोड़कर आया हूं। मेरी चाय ठंडी हो जाएगी।'

टैक्सी में घर लौटते हुए उसने सीमा से पूछा, 'ये कब तक लौटकर आएंगे ?' जवाब मिला, 'पता नहीं कब तक आते हैं। जब भी दोस्तों से छुट्टी मिल जाएगी।' अकेला ठंडा-सा कमरा था जिसमें उसने देव के लौटने की प्रतीक्षा की थी। सीमा ऊंघ रही थी, उससे उसने जाकर सो रहने को कह दिया था। बीजी के सिर में दर्द था, वे पहले ही सो चुकी थीं। घर में एक नयी लड़की के आने की खास खुशी किसी को नहीं थी। शायद देव के माथे की शिकन ही इसका कारण थी।

खाना पड़ा-पड़ा ठंडा हो गया था। कोशिश करने पर भी उससे खाया नहीं गया था। देव ने थाली देखकर पूछ लिया था, 'अभी तक भूखी बैठी हो तुम ? मैंने सोचा देर हो गई है, खा लिया होगा तुमने।'

उसके बाद फिर कोई दिलचस्पी नहीं। जैसे कि और दिनों से कोई फर्क ही न हो उस दिन में, 'सीमा ने मेरे कपड़े कहां रखे हैं ?' उसके बारे में कोई सवाल नहीं कि उस नयी जगह पर अकेली वह कैसा महसूस कर रही है। उसे रुलाई आने लगी। उसके पिता ने इन लोगों को इस सम्बन्ध के लिए राजी करने के लिए क्यों इतनी कोशिश की थी ? 'लड़का तो शादी करना ही नहीं चाहता, पर उसकी मां ने किसी तरह जोर डालकर उसे राजी कर लिया है।' यह जान लेने के बाद भी क्यों वह खुद ही अपनी तरफ से मना नहीं कर सकी ? 'शादी होने के बाद सब ठीक हो जाता है। मुझे भरोसा है, तुम सब संभाल लोगी।'

नाइट शर्ट के खुले बटन। घने काले बालों से लदी छाती। देव ने बिना उससे पूछे कि उसे नींद आ रही है या क्या, कमरे की बत्ती बुझा दी।

एक विशेष तरह की गन्ध जो अंधेरे में उसके पास आकर पलंग पर लेट गई। वह गन्ध एक अपरिचित शरीर की भी थी और सांसों में मिली एलकोहल की भी। एकाएक, जीवन में दूसरी बार, एक पुरुष की बांहों में कस जाने पर उसका जी क्यों मितलाने लगा था ?

उसने संघर्ष किया था। अपने शरीर को उस शरीर के आवेग से बचाने के लिए भी और अपनी सांस को उस गन्ध से बचाए रखने के लिए भी। एक क्षण था, जिसके इस तरफ, रजिस्टर पर हस्ताक्षर कर देने के बाद भी, वह अनब्याही थी। उस क्षण तक उसके संघर्ष में अपनी उस स्थिति को बनाए रखने का आग्रह था। एक उद्वेग था कि शायद अब भी वह दूसरा

वह उसकी रुचि का ध्यान रखने की कोशिश भी करता, 'सीमा के साथ घूमने निकल जाया करो शाम को। तुम्हें खुले में रहने की आदत है। उस लिहाज से यह शहर बुरा नहीं है।' देव के व्यवहार में ऐसा कुछ नहीं था, जिसे शिकायत की जा सकती। सिवाय उस इकहरी तटस्थता के जिसे केवल उसका स्वभाव मानकर वह नहीं चल पाती थी। देव को उसकी किसी बात पर गुस्सा नहीं आता था। आता भी था, तो वह उसे प्रकट नहीं होने देता था। स्पष्ट लगता था कि इसके लिए उसे प्रयत्न करना पड़ता है। बीजी या सीमा की कई बातों से खीजकर वह उन पर झल्लाने लगता था, पर उससे कैसी भी गलती हो जाए, वह उदासीन मुस्कराहट के साथ केवल इतना-भर कह देता था, 'कोई बात नहीं। आगे से ध्यान रख लेना इस चीज का।'

रात के कई घण्टे एक कमरे में साथ-साथ बीतते थे, फिर भी देव के आने के साथ ही वह कमरा उसके लिए फिर से नया और अपरिचित हो जाता था। उस व्यक्ति से भी जो उसका पति था, हर रोज जैसे नये सिरे से उसका परिचय होता था। नये सिरे से बातचीत की शुरुआत होती थी, पर एक आकस्मिक घनिष्ठता तक पहुंचकर परिचय एकाएक समाप्त हो जाता था। देव को जल्दी नींद आ जाती थी और वह देर-देर तक यह सोचती करवट बदलती रहती थी कि उसके शरीर को वास्तव में उसी का शरीर मानकर वह व्यक्ति उसके पास आता है या रोज वह उसके लिए किसी-न-किसी और की भूमिका ही निभाती है? देव का एकाएक उमड़ना और शान्त हो जाना, उसमें उसे अपना-आप बाजारू-सा जान पड़ता था। वह कितना चाहती थी कि उनके बीच इसके अतिरिक्त भी कोई सम्बन्ध हो। और कुछ नहीं, तो कभी देव उस पर बिगड़कर बकझक ही करे। कहे कि उसकी जिन्दगी की कुछ और भी जरूरतें हैं, जो पत्नी के रूप में उसे पूरी करनी चाहिए, पर ऐसा कुछ नहीं होता था। रजिस्टर पर हस्ताक्षर करते समय देव के मुंह से सुनी झिड़की में फिर भी एक अधिकार था, जो या तो देव ने रजिस्ट्री के दफ्तर में ही छोड़ दिया था या पहली रात को सोने और जागने के बीच किसी क्षण उस कमरे में खो दिया था। एक बार उसने देव से शिकायत भी की कि बीजी और सीमा की तरह वह कभी उसे क्यों नहीं डांटता। देव ने चलते ढंग से उत्तर दिया, 'वे लोग अच्छी तरह जानती हैं मुझे क्या पसन्द है, क्या नहीं। उन्हें इसका ध्यान रखना ही चाहिए। तुम्हारी बात दूसरी है। तुम अभी नयी आई हो।'

यह नयापन ही उन दोनों के बीच की रेखा थी। महीना, दो महीने, चार महीने गुजर जाने पर भी वह नयापन या कोरापन, ज्यों-का-त्यों बना

स्वयं नहीं कर पाती थी। पर गोपाल जी की आलोचना करने लगे, तो उसका चेहरा सुर्ख होने लगता था। यह कैसे सम्भव था कि गोपाल जी के बताए अर्थ के अतिरिक्त कोई दूसरा अर्थ हो इन पंक्तियों का ? एक बार लाइब्रेरी में गोपाल जी के बताए अर्थ को ठीक न समझाने की कोशिश में उसने अपने को गलत तरह से लड़कियों से उलझा लिया था। लड़कियां इस तरह उसे छेड़ने लगीं कि उसे कुर्सी छोड़कर लाइब्रेरी से बाहर निकल आना पड़ा। लड़कियां तब से उसे बुलाने लगी थीं, 'स्वीट लव !' उसे लड़कियों की इस चुहल का बुरा भी लगता, पर गोपाल जी के साथ उसका नाम जोड़कर बात कही जा रही है, यह चीज मन को गुदगुदा भी देती। धीरे-धीरे बात इतनी फैल गई कि एक दिन जब वह कालेज नहीं जा सकी, तो लड़कियों ने गोपाल जी की क्लास में ब्लैकबोर्ड पर बड़े-बड़े शब्दों में लिख दिया : 'सारी, नो इन्स्पीरेशन टुडे। जब उसे यह बात बताई गई, तो उसने इस पर नाराज होना चाहा, पर मन में उसे खुशी हुई कि इस तरह उसके रहस्य की बात गोपाल जी पर खुल गई है।

बीच में कुछ दिन वह बीमार रही। बीमारी के बाद एक दिन डरते-डरते गोपाल जी से कहा, 'इस बीच मेरी जो पोइम्ज छूट गई हैं, उन्हें समझने के लिए क्या किसी दिन आपसे समय ले सकती हूं ?'

गोपाल जी ने अपने घर आने का समय दिया। वह अकेली जाने का साहस नहीं कर सकी, इसलिए बहन को साथ ले गई। घर पर गोपाल जी को अकेले पाकर बहन को अच्छा नहीं लगा, 'शादी-शुदा आदमी हैं वे। अपने बीवी-बच्चों को आज ही क्यों उन्होंने बाहर भेज दिया था ?'

पर उसके बाद भी वे दोनों गोपाल जी के यहां जाती रहीं। गोपाल जी ने अपनी पत्नी से उनका परिचय करा दिया था। वह गोपाल जी से जिस तरह के सवाल करती, उससे एक दिन उन्होंने बहन से कहा, 'यह लड़की इतनी छोटी उम्र में जिस तरह बात करती है, उससे मुझे इनसे ईर्ष्या होती है। किसी-किसी समय तो इसकी आंखों की चमक से मुझे डर भी लगता है।'

बहन का कहना था कि यह एक तरह का उलाहना है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है कि वह अपनी उम्र से बड़ी बनकर बात करती है और गलत तरह की नजर से उन्हें देखती है।

वह खूब रोई। दो-एक दिन गोपाल जी की क्लास में नहीं गई। उसे एक साथ सबसे चिढ़ हो गई थी। अपने से, बहन से, गोपाल जी से, पर उसके जन्म-दिन पर गोपाल जी ने 'एक उपहार देने के लिए' उसे अपने यहां बुलाया, तो वह बिना बहन को बताए अकेली वहां चली गई। गोपाल

देश की राजनीतिक गतिविधियों में दिलचस्पी लेकर अपने को उसके स्तर तक उठाने का प्रयत्न करेगी। उसने अपने को विश्वास दिला लिया था कि उस व्यक्ति का विवाह से उसका तिरस्कार नहीं है, एक अधिक गहरे स्तर पर उनके सम्बन्ध की शुरुआत है। इसलिए राजीव का पक्ष लेकर एक बार वह घर के लोगों से लड़ भी ली थी।

पहले राजीव उनके यहां बहुत आया करता था, पर एकाएक ही उसका आना बहुत कम हो गया था। वह इसके लिए भी घर में तर्क दे लेती थी, परन्तु एक दिन चचेरी बहन से ही पता चला कि एक संसद्-सदस्य की छोटी बहन से राजीव की सगाई हो गई है। उस लड़की को वह जानती थी। इतनी शोख, बातूनी और बनने वाली लड़की थी वह कि उसके साथ दस मिनट बात करना भी उससे सहा नहीं जाता था। जब बहन ने बताया, तो वह काफी देर अपनी पढ़ने की मेज के पास काठ होकर बैठी रही। मेज और दीवारों के साथ-साथ अपने अन्दर का न जाने कितना कुछ अंधेरे में डूबता गया। उसे झटका-सा लगा जब उसके पिता ने चपचाप पास आकर टेबल-लैम्प जला दिया। कुर्सी से उठते हुए उसे लगा कि तेईस साल की उम्र में ही उस पर बुढ़ापा आ गया है।



दरवाजे के बाहर दो फुसफुसाती आवाजें। बीजी और सीमा।

'तू बात नहीं मानेगी ?'

'नहीं।'

'सिर्फ आज रात के लिए कह रही हूं।'

'कह दिया नहीं।'

दरवाजा चरमराया। अंधेरे में रोशनी की हलकी-सी दरार बन गई। सीमा का शरीर दरार से अन्दर दाखिल होने को हुआ, जब उसे बाहर खींच लिया गया। दरार बन्द हो गई।

'इस तरह जिद क्यों करती है ?'

'तुम क्यों करती हो ?'

'मैं मिन्नत से कह रही हूं। आज की रात मेरे कमरे में सो जा।'

'उस कमरे में मुझे नींद नहीं आती।'

'आहिस्ता बात कर। वह जाग जाएगी।'

'जाग जाए। तुम मेरा हाथ छोड़ दो।'

'मुन्नी !'

'क्यों ख्वामख्वाह परेशान कर रही हो ? मैं रोज जिस कमरे में सोती हूं, आज भी उसी में सोऊंगी।'

पर पता नहीं उसके ऊपर झुककर वह जान-बूझकर उसे यह जतलाना चाहती थी या सिर्फ उसकी नींद की ही टोह ले रही थी। सीमा की सांसें इतनी करीब आ गई थीं कि उन्हें सूंघते हुए चुपचाप आंख मूंदकर पड़े रहना श्यामा के लिए असम्भव होने लगा। लगने लगा कि अब अगले ही क्षण वह झटके से उठकर बैठ जाएगी और डांटने के स्वर में सीमा से पूछ लेगी कि क्या उसकी नींद भी उस घर में उसके लिए व्यक्तिगत नहीं रह सकती ? पर यह सोचकर उसकी आंखें फिर भी मुंदी रहीं, कि डांट सुनकर सीमा हंसने लगी, तो सिवाय उसका मुंह देखते रहने के उससे और कुछ भी कहते-करते नहीं बनेगा, पर वह क्षण आने से पहले जब उसकी आंखें बरबस खुल ही जातीं, सीमा की सांसें परे हट गईं और वह जिस तरह दम साधकर पड़ी थी, पड़ी रही।

बन्द आंखों को बत्ती की लौ अखर रही थी, पर करवट बदलकर वह फिर सीमा का ध्यान अपनी ओर नहीं खींचना चाहती थी। चेहरे पर नींद का भाव बनाए वह काफी देर सीमा के बत्ती बुझाने की राह देखती रही। आहटों से अन्दाजा लगाती रही कि अब सीमा कुर्ता-लुंगी उतार रही है, अब आईने के सामने खड़ी होकर नाइटी पहन रही है, अब बालों की पिनें निकाल रही है, अब चेहरे पर क्रीम मल रही है और अब शायद बत्ती बुझाने के लिए बटन की तरफ जा रही है, पर कई बार कई तरह से आहटों के अर्थ लगा चुकने पर भी बत्ती नहीं बुझी, तो एक बार उसने चोरी से आंख खोलकर देख लिया।

सीमा ड्रेसिंग टेबल के पास खड़ी थी और चेहरा आईने के बहुत पास ले जाकर एक हाथ से उस पर के किसी निशान को छू रही थी। ब्रेसियर और अण्डरवियर के सिवा शरीर पर कोई कपड़ा नहीं था। दूसरा हाथ पीछे से ब्रेसियर की बकल खोलने की चेष्टा में रुका हुआ था। पल-भर बाद चेहरे वाला हाथ भी पीछे की तरफ आ गया। सीमा कुछ देर अपने होंठों को भींचे रही, फिर उन्हें ढीला छोड़कर सीधी हो गई। गर्दन उसकी इस तरह तन गई, जैसे सामने के चेहरे की किसी चुनौती का सामना करने जा रही हो। गर्दन झटकने से उसके आधे बाल माथे पर आ गए थे। उनकी जाली के अन्दर से अपने को देखते हुए उसने पीछे से बकल खोल दिया। दोनों तरफ के फीते एकाएक सिकुड़ गए और कंधों के फीते फिसलकर नीचे आ गए। ब्रेसियर निकल जाने से गोरा शरीर एकाएक बत्ती की रोशनी से सुलग गया।

श्यामा ने आंखें मूंद लीं। उसे लगा उसे सीमा के भरे हुए शरीर से ईर्ष्या हुई है। सीमा की पीठ पर पड़ी फीते की लास और कोमल खाल में

अपनी तरह से घर की मालकिन थीं। तीनों अपनी-अपनी मजबूरी से आपस में जुड़ी थीं। रुचियां और अपेक्षाएं, तीनों की अलग-अलग थीं। साथ रहकर तीनों की परस्पर सिवाय इसके कोई निर्भरता नहीं थी कि घर की आर्थिक स्थिति उन्हें एक साझे किचन से खाना खाने के लिए विवश करती थी। बीजी सीमा से दबती थीं। उसका भी खुलकर तिरस्कार नहीं कर पाती थीं, कारण केवल यही था। सीमा बीजी का थोड़ा-बहुत अंकुश मानती थी या उसके वहां आ रहने को व्यंग्य के साथ सह लेती थी, तो वह भी इसीलिए था। और यह स्वयं भी बीजी की कड़वी बात सुनकर चुप रह जाती थी या सीमा की उद्दंडता से मन चुरा जाती थी, तो उसके मूल में भी यही चीज थी। पर जब वह पहले से यह सब जानती थी, तो अपने को बिलकुल उन लोगों से काट लेने की जगह यहां आने और रहने का निश्चय उसने किया ही क्यों था?

आने से पहले अपने को जो कारण दिए थे, उनमें एक था बेबी के लिए दूसरी तरह का वातावरण जुटाना। उसके साथ अकेली रहकर लड़की स्वाभाविक ढंग से बड़ी नहीं हो रही थी। कोई और भाई-बहन नहीं था, इसलिए उसके अकेलेपन को दूर करने का यही एक उपाय नजर आया था। सोचा था दो और लोगों के बीच रहने से लड़की अपने को ज्यादा बांटकर जीना सीख सकेगी। इसके अतिरिक्त पिता की कमी भी पिता से सम्बन्धित लोगों के बीच रहकर कुछ हद तक पूरी हो सकती थी। बीजी सचमुच बेबी से प्यार करती थीं, चाहे अपने लड़के के कारण ही हो, वे उससे खेलकर या उसकी जिदें पूरी करके आन्तरिक खुशी महसूस करती थीं। किसी अपने का होना, चाहे वह कितना ही निरर्थक क्यों न हो, अपने में एक पूर्ति हो सकती थी। लेकिन बीजी के पास बेबी को लाने में एक आशंका भी थी जो यहां आकर सही साबित हो रही थी। बेबी अब उससे उखड़कर बिलकुल अलग हुई जा रही थी। वहां उसके साथ अकेली रहकर वह उसे जितना परेशान रखती थी, उससे कहीं ज्यादा यहां उससे दूर-दूर रहकर रखने लगी थी। बीजी को यह जतलाकर सन्तोष मिलता था कि वे मां से ज्यादा बेबी की अपनी हैं और बेबी भी दो अधिकारों के बीच अपनी सुविधा के पलड़े को भांपना सीख रही थी। वह बेबी को उसके हित के लिए जिन लोगों के बीच रखने लाई थी, आज उन्हीं से उसे अलगा लेना ही क्यों उसे अधिक हितकर लग रहा था? अगली सुबह बेबी को वहां स्कूल में दाखिल कराने की बात थी। बड़ी मुश्किल से बीच टर्म में दाखिला मिल रहा था। एक लड़की छोड़-कर चली गई थी, इसलिए। पर अब तक इस बात को वह मन में

अपने जिस विचार को वह मन से परे रखना चाहती थी, वही इसका उत्तर जान पड़ता था। वह वहां आई थी, क्योंकि कुमार वहां था। जीजा जी के पत्र से उसके वहां होने का पता न चला होता, तो पूना का मकान बिकने से पहले ही शायद उसने लिख दिया होता कि वे लोग उसके साथ किसी छोटे शहर में रहने को तैयार नहीं हैं, तो वहीं रहें। वंबई में फ्लैट खरीदने के लिए पैसे का प्रवन्ध हो भी जाए, तो कम-से-कम वह वहां आकर नहीं रह सकेगी। कुमार के वहां होने के कारण मन में जो वाधा थी, वह उस दवी हुई आकांक्षा के कारण ही थी, जिसे वह अपने से स्वीकार करते डरती थी और डरने का कारण भी शायद अपना-आप उतना नहीं था जितना पूरी स्थिति को लेकर अनिश्चय। कुमार के नाम उसने जो पत्र लिखा था, वह कुछ दिन वाद उसी तरह वंद उसके पास लौट आया था। वाहर डाकिये के हाथ की लिखावट थी कि पत्र पाने वाला विना अपना नया पता दिए वहां से चला गया है। उसे कहीं अच्छा भी लगा था कि उसका पत्र कुमार को नहीं मिला, पर एक उत्सुकता फिर भी वनी रही थी कि उसे पत्र मिल जाता, तो भी क्या उस दिन वह उससे मिलने न आया होता? उस दिन और आज के वीच एक लंवा समय गुजर चुका था। आज फिर एक वार उसने कुमार को अपनी तरफ से बुलावा दिया था। कुमार ने आने को कहा था, आया भी था शायद, पर उसके पहुंचने तक इंतजार करता रुका नहीं था। कहीं यही तो वजह नहीं थी, जो अव इतनी जल्दी वह वहां से लौट जाना चाहती थी?

टन् टन् टन् साथ के कमरे से पुराना क्लाक वीच-वीच में समय की चेतावनी दे देता था। उस क्लाक की आवाज उन दिनों भी सुना करती थी जब देव के साथ विस्तर पर लेटे हुए रात-रात नींद नहीं आती थी। जैसे वही समय था, तव से वहीं ठहरा हुआ, एक से वारह तक की गिनती वार-वार दोहराता हुआ। वह तव समय के उस तरफ थी जहां अपनी मानसिक उथल-पुथल में वह जिंदगी को अपने से आगे देखती थी। समय का मध्यविन्दु वीच में कव आया और निकल गया पता नहीं। अव वह समय के इस तरफ थी जहां जिंदगी अपने से पीछे छूट गई लगती थी। यहां से क्या उसके लिए अव कोई भी निर्णय, कोई भी कदम, आगे की दिशा में सम्भव नहीं था?

कुमार से वह क्या चाहती थी? उस रात की प्रतीक्षा में जो चाह मन में थी, क्या सचमुच वही और वस उतना ही? उतना तो देव ने भी उसे दिया था। चाहती, तो देव के अतिरिक्त किसी से भी वह उसे मिल सकता था। प्रोफेसर मल्होत्रा ने कितनी याचना के साथ वह चाहा था

छिपाकर रखने में विश्वास नहीं रखती थीं। क्या उसकी यह धृष्टता ही जीने की सही दृष्टि नहीं थी? अपने-आप को विश्वास के साथ झेल लेना, जी लेना, क्या इसी में जीने की सार्थकता नहीं थी? आज वह जो अपने को समय के इस तरफ पहुंच गई महसूस करती थी, उसका कारण उसके अंदर का संशय, डर या उन दोनों से वदतर उसका दम्भ ही नहीं था?

टन् टन् टन् सुवह होने वाली थी। सुवह-सुवह वीजी पलंग पर ही कीर्तन करने लगती थीं, जिससे नींद में भी चिढ़ होती थी। उसे लग रहा था कि उधर से वह आवाज आने से पहले ही उसके अन्दर निर्णय हो जाना चाहिए। वह वहां आई है, तो रहने के विचार से ही आई है। कुमार वहां पर है। वह व्यक्ति इतने दिन वीत जाने पर भी मन को वांधे रहा है। और लोगों की तुलना में उसके लिए वह अपनी एक विशेषता रखता है। उसे इस स्थिति को खुले मन से स्वीकार करना चाहिए। कुमार से मिले और खुलकर वात किए विना वहां से चली जाना उसकी साहसहीनता का एक और उदाहरण होगा। कुमार से मिलने के वाद लगे कि वहां रहने से सच-मुच मन को सहारा मिल सकता है, तो नौकरी से त्यागपत्र दे देना चाहिए। उसके वाद जो भी और निर्णय लेने को हो, साहस के साथ ले लेना चाहिए।। उसकी आज की वास्तविकता यही है कि उसे अपने लिए एक पुरुष के सहयोग की आवश्यकता है। कुमार वह पुरुष हो सकता है। आवश्यकता पूरी करने के लिए जो भी मूल्य चुकाना पड़े, वह चुकाने को उसे तैयार ही रहना चाहिए।



सुवह उठने पर श्यामा को जिस्म में टूटन महसूस हो रही थी। खिड़की से टकराती धूप वासी और वेरंग लग रही थी। कितना भी पानी वरस जाए, वहां की धूप में ताजगी आ ही नहीं पाती थी।

सीमा काफी खुश थी। उठने के वाद से ही लगातार कुछ-न-कुछ गुन-गुना रही थी। वेवी न जाने क्यों रोनी हो रही थी। वात-वात पर घर को सिर पर उठाने लगती थी। वीजी खामोश थीं। रोज की तरह जेनी के कामों पर नुक्ताचीनी नहीं कर रही थीं। सीमा की छुट्टी का दिन था, इसलिए नाश्ता देर से वना था। श्यामा अपना हर काम मशीनी ढंग से पूरा करती रही। सीमा से वह आंख वचा रही थी। नाश्ते की मेज पर किसी की किसी से विशेष वात नहीं हुई। 'क्या', 'कहां', 'अच्छा', 'हां' में ही नाश्ता पूरा कर लिया गया।

वह मेज से उठने लगी, तो वीजी के मुंह से निकले सवाल ने उसे रोक

को यहां दाखिल कराने का कोई मतलब ही नहीं है। न तो वह हमेशा के लिए तुमसे अलग होकर रह सकती है और न ही मैं चाहूंगी कि इस तरह उसे यहां रखा जाए। तुम्हारा जो पैसा इस फ्लैट पर लगा है, वह मैं थोड़ा-थोड़ा करके अपनी नौकरी से चुका सकती हूं। और वह तुम्हें पसंद न हो, तो फ्लैट बेचा भी जा सकता है, लेकिन तुम अब भी समझो कि यहां साथ रहा जा सकता है, तो कुछ चीजें हमें आपस में तय कर लेनी चाहिए। बेबी का यहां दाखिल होना-न-होना छोटी बात है। बड़ी बात हम लोगों की आपस की है। हम लोग एक-दूसरे से डरती-दबती हुई यहां रहें यह बात निभने वाली नहीं है। न ही किसी एक का दूसरी पर एहसान लादना और दूसरी का एहसान झेलना ही निभ सकता है। अगर साथ रहना है, तो अपनी-अपनी खातिर ही सबको रहना है। मैंने बीजी से भी यह बात कह दी है। इनकी अपनी जिंदगी है। ये जिस तरह चाहें, उसे जियें। हममें से किसी का उसमें दखल नहीं है। मेरी अपनी जिंदगी है। मैं जिस तरह भी उसे जिऊं, तुममें से किसी का उसमें दखल मुझे बरदाश्त नहीं होगा। इसी तरह तुम्हारी अपनी जिन्दगी है। तुम भी चाहे जिस तरह उसे जियो।'

'तुम सब लोगों के एक घर में साथ रहने की बात कर रही हो या किसी होस्टल में?'

'मैं एक घर में साथ रहने की ही बात कर रही हूं। होस्टल में किसी-को किसी से ये बातें तय नहीं करनी होतीं। दबना-दबाना, छिपाना-छिपाना, यह सब एक घर में साथ रहने पर ही जरूरी लगता है। मेरे खयाल में यह बहुत दकियानूसी ढंग है जीने का। कम-से-कम अपने लिए मैं यह ढंग नहीं अपना सकती। ममी कितनी बार तुम्हें लेकर कहती हैं, 'उसके सामने ऐसा मत कर। उसके सामने ऐसे मत बोल।' मैं इनसे फिर साफ कह देना चाहती हूं। मुझसे किसी भी तरह की दिखावे की जिंदगी जीने को ये कहेंगी, तो मैं बिलकुल नहीं जिऊंगी। उसके लिए मुझे अलग रहना पड़ेगा, तो मैं अलग जा रहूंगी।'

बीजी पल्ले से आंख पोंछ रही थीं। सीमा ने एक बार उकताहट के साथ उन्हें देख लिया, 'तुम्हें रोना किस बात का आ रहा है, ममी?'

बीजी जवाब न देकर पल्ले को और जोर से मलने लगीं। सीमा झुंझलाहट के साथ उठ खड़ी हुई, 'तुम्हारे साथ यही दिक्कत है कि जहां तुम्हें बात नहीं सूझती, वहां तुम रोना शुरू कर देती हो। मैं इस वक्त तुम्हें बताकर जा रही हूं कि रात को मुझे लौटने में देर हो जाएगी। खाना मैं घर पर नहीं खाऊंगी। आकर मैं अपने कमरे में ही सोऊंगी। लौटने

आता था। श्यामा को अपने से कहीं ज्यादा उस व्यक्ति का ध्यान बेबी पर केन्द्रित लगता था कि कहीं बेबी अनजाने में सामने के खम्भे से न टकरा जाए, या उसका पांव सड़क पर न फिसल जाए। फिर किसी-किसी क्षण उस व्यक्ति का चेहरा कुमार का हो जाता था। तब वह बेबी की तरफ से उदासीन लगातार उसी से बात किए जाता था। अपनी ही कोई बात जिसमें वह उसकी प्रतिक्रिया जानने के लिए भी नहीं रुकता था। बीच में अगर वह अपनी ओर से कोई बात करने लगती थी, तो वह बार-बार अपनी कलाई की घड़ी में वक्त देखने लगता था। आसपास की भीड़ से या भीड़ में उसके किसी से टकरा जाने से, उसे कोई मतलब नहीं था। वह सिर्फ अपनी किसी बात से उसे सहमत करना चाहता था और उस उलझन में खुद ही किसी चीज से ठोकर भी खा जाता था।

और फुटपाथ के किसी हिस्से में किसी उपाहारगृह से आती काफी की खुशबू के पास से गुजरते हुए वह सहसा अपने में अकेली हो जाती थी। तब बेबी का हाथ थामे रहना उसी तरह हो जाता था जैसे टाफी के डब्बे को हाथ में संभाले रहना। उसे सोचना पड़ता था कि वह कहां है, किस ओर जा रही है और उसके रुकने का बस-स्टाप कौन-सा है। समय से ध्यान न आ गया होता, तो शायद उसने घर की जगह कोलाबा जाने वाली बस पकड़ ली होती।

घर से चलते वक्त सोचा था आज फिर कुमार को फोन करेगी, पर टाफी की दुकान में फोन सामने रखा रहने पर भी उससे नंबर मिलाते नहीं बना। शायद इसीलिए कि उस समय मन से वह देव के साथ थी।

देव टाफी का डब्बा खोलकर उसमें से टाफी बेबी को खिलाना चाह रहा था और वह सोच रही थी कि बेबी का दाखिला करा देने के बाद अब इस शहर में रहने के लिए उसे और कौन-सी चीजें खरीदनी होंगी। कुमार टेलीफोन के दूसरे सिरे पर बैठा एक ऐसा व्यक्ति लगा था जिससे वह उस समय सिवाय मामूली हालचाल पूछने के और कोई बात नहीं कर सकती थी।

मीमा उसके लौटने तक घर से जा चुकी थी। बीजी अपने कमरे में दिन की नींद सो रही थीं। बेबी साथ के फ्लैट में जाने की जिद कर रही थी, इसीलिए उसे जेनी के साथ भेजकर वह हर तरह से खाली हो गई।

धूप ढल रही थी। खिड़की के बाहर भी और अपने अन्दर भी। वह दो कमरे का फ्लैट उस समय जितना अकेला था, अगर हर समय उसके लिए उतना ही अकेला रह सकता—तब क्या वह ज्यादा आसानी से यहां

होता, तो पूछता इससे, क्या सचमुच पूछता ? या पत्नी की तरह अपनी बहन को लेकर भी वह अब तक उदासीन हो गया होता ? उन दिनों पूछने की कितनी बातें होती थीं कम-से-कम उससे पूछने की, पर क्या कभी वह उससे पूछता था ? उसकी देव से सबसे बड़ी शिकायत यही नहीं थी कि वह कभी उससे कुछ नहीं पूछता था और यह पूछने पर कि क्यों नहीं पूछता, वह केवल उसका कंधा थपथपा देता था ? वह अगर जीवित होता और सीमा को लेकर भी उतना ही उदासीन हो रहता, तो क्या सीमा ही इसे झेल लेती ? पर सीमा को लेकर शायद वह उदासीन हो ही न पाता। सीमा के साथ देव का सम्बन्ध वास्तविक था, जो कि उसके साथ नहीं था। सीमा देव से लड़ भी सकती थी, जो वह नहीं कर सकती थी। लड़ना अधिकार बनाए रखने के लिए होता है। बिना अधिकार की सीमा तक पहुंचे, किसी से लड़ा कैसे जा सकता है ? वह लड़ने कोशिश भी करती, तो क्या यही न सुनने को मिलता, 'तुम अपनी जगह ठीक हो। मैं कोशिश करूंगा कि•••?'

आज भी अगर ऐसा होता, तो उसके लिए फैसला करना कितना आसान होता ! वह भी एक दिन उतने ही उदासीन भाव से देव से कह देती कि उससे अब इस तरह नहीं जिया जाता। वह या तो एक निश्चित सम्बन्ध में उसके साथ जी सकती है या बिलकुल नहीं। जिस तरह पहले एक बार कोर्ट में हस्ताक्षर किए थे, उसी तरह फिर दूसरी बार भी किए जा सकते हैं। वह किसी के लिए मजबूरी बनकर और उसकी मजबूरी अपने पर लेकर ही पूरी जिंदगी नहीं काट देना चाहती। वह अलग होकर अपने लिए जिंदगी में कोई भी और रास्ता अपना सकती है। वह रास्ता चाहे बिलकुल अकेलेपन का हो, पर उसके मुंह से अलग होने की बात सुनकर भी क्या देव उसे रोकता ? अपनी दूरी की मुसकराहट के साथ क्या फिर यह न कह देता, 'ठीक है तुम्हें इस तरह खुशी मिल सकती है, तो मुझे इसमें भी एतराज नहीं। कल-परसों आफिस से छुट्टी लेकर मैं कोर्ट में अर्जी दे देता हूं।'

उसके साथ देव का व्यवहार ऐसा ही था। पहले दिन से अन्तिम दिन तक, पर क्यों ऐसा था ? इतनी तटस्थता से क्या आदमी की अपनी भी जिन्दगी निकल सकती है ? देव जीवित होता, वे लोग साथ-साथ जिंदगी काट रहे होते और ऐसे में कुमार से उसका परिचय हो जाता, सब-कुछ उसी तरह होता, जैसे कि हुआ था और वह देव के सामने पूरी बात उगल देती, तो भी क्या उसकी तटस्थता उसी तरह बनी रहती ? चुप-चाप सिर हिलाकर उसने कुछ ऐसा कह दिया होता, 'अच्छा किया तुमने

कौन-सी है ? वे लोग यह मानकर ही नहीं चल रही थीं कि वह कुछ दिनों से ज्यादा वहां नहीं रहेगी। वह इस स्थिति को हरगिज स्वीकार नहीं करेगी कि वेवी वहां रह जाए और वह खुद अपनी उसी मनहूस नौकरी में लौटकर उनकी मांग का खर्चा जुटाकर उन्हें भेजती रहे। वह आज यह बात स्पष्ट कर देगी कि उससे ऐसी आशा उन्हें नहीं रखनी चाहिए। वह रहने के इरादे से आई है, तो अब वहां रहेगी ही। इसमें उन लोगों को असुविधा होती है, तो वह कुछ नहीं कर सकती।

सीमा देर से आने को कह गई थी, फिर भी खाना खाने के बाद से ही वह उनकी प्रतीक्षा करने लगी थी। खाना खाते हुए बीजी से उसने इस बारे में कोई बात नहीं की।

बीजी रोना शुरू करके बात की पूरी शक्ल ही बदल दे सकती थीं। उनसे वह ऐसे ही इधर-उधर की बातें करती रही। वेवी की प्रिंसिपल के बारे में, बसों की भीड़ के बारे में, जेनी और दरबान के बारे में। बीजी जेनी से खुश नहीं थीं और चाहती थीं उसकी जगह कोई दूसरी नौकरानी ढूंढ़ ली जाए, 'लेकिन आजकल इतने पैसे मांगती हैं ये लोग।' बीजी हर बात में महंगाई का जिक्र लाकर उसे घर की बढ़ती आवश्यकताओं के बारे में सचेत करती रहती थीं, 'अगर आते ही यहां सीमा की नौकरी न लग जाती, तो पता नहीं किस तरह चल पाता।' बीजी उन छोटे-मोटे कर्जों का भी जिक्र करती रही थीं, जो अब तक उन्हें अपने सम्बन्धियों से लेने पड़े थे, 'बालू इतना प्यार करता है सीमा को। बिलकुल सगी बहन की तरह मानता है, पर इधर उसने अपनी बड़ी कोठी बनवाई है, इसलिए इन दिनों उसका भी हाथ खाली है।'

बहुत दिनों के बाद वह बीजी के पास देर तक बैठ पाई थी। वेवी बीजी से कहानी सुनने की इंतजार करती कुर्सी पर ही सो गई थी। दस बजे से करवटें बदलते उसने ग्यारह बजते सुने, फिर बारह। सीमा के लौटकर आने तक उसके बाद भी पंद्रह-बीस मिनट गुजर चुके थे।

सीमा को कोई छोड़ने के लिए साथ आया था। सीमा ने आकर घंटी नहीं बजाई, जिसका मतलब था फ्लैट की एक चाबी उसके पास भी थी। और बीजी ने आने के दिन ही उससे कहा था कि घर में एक ही चाबी है, दूसरी चाबी उन्हें बनवानी पड़ेगी। इसका भी अर्थ यही था कि शुरू से ही उसे वहां एक अस्थायी मेहमान से ज्यादा कुछ माना ही नहीं गया था।

साथ आया व्यक्ति कुछ देर गैलरी में रुका रहा। कुछ अस्पष्ट स्वर में कहे गए शब्द, एक हल्की खिलखिलाहट और दो-दो बार की गई 'गुड नाइट।' सीमा अन्दर आते ही हल्के से उसकी तरफ मुसकराकर सीधे

कौन-सी है ? वे लोग यह मानकर ही नहीं चल रही थीं कि वह कुछ दिनों से ज्यादा वहां नहीं रहेगी। वह इस स्थिति को हरगिज स्वीकार नहीं करेगी कि बेबी वहां रह जाए और वह खुद अपनी उसी मनहूस नौकरी में लौटकर उनकी मांग का खर्चा जुटाकर उन्हें भेजती रहे। वह आज यह बात स्पष्ट कर देगी कि उससे ऐसी आशा उन्हें नहीं रखनी चाहिए। वह रहने के इरादे से आई है, तो अब वहां रहेगी ही। इसमें उन लोगों को असुविधा होती है, तो वह कुछ नहीं कर सकती।

सीमा देर से आने को कह गई थी, फिर भी खाना खाने के बाद से ही वह उनकी प्रतीक्षा करने लगी थी। खाना खाते हुए बीजी से उसने इस बारे में कोई बात नहीं की।

बीजी रोना शुरू करके बात की पूरी शक्ल ही बदल दे सकती थीं। उनसे वह ऐसे ही इधर-उधर की बातें करती रही। बेबी की प्रिंसिपल के बारे में, बसों की भीड़ के बारे में, जेनी और दरबान के बारे में। बीजी जेनी से खुश नहीं थीं और चाहती थीं उसकी जगह कोई दूसरी नौकरानी ढूंढ़ ली जाए, 'लेकिन आजकल इतने पैसे मांगती हैं ये लोग।' बीजी हर बात में महंगाई का जिक्र लाकर उसे घर की बढ़ती आवश्यकताओं के बारे में सचेत करती रहती थीं, 'अगर आते ही यहां सीमा की नौकरी न लग जाती, तो पता नहीं किस तरह चल पाता।' बीजी उन छोटे-मोटे कर्जों का भी जिक्र करती रही थीं, जो अब तक उन्हें अपने सम्बन्धियों से लेने पड़े थे, 'बालू इतना प्यार करता है सीमा को। बिलकुल सगी बहन की तरह मानता है, पर इधर उसने अपनी बड़ी कोठी बनवाई है, इसलिए इन दिनों उसका भी हाथ खाली है।'

बहुत दिनों के बाद वह बीजी के पास देर तक बैठ पाई थी। बेबी बीजी से कहानी सुनने की इंतजार करती कुर्सी पर ही सो गई थी। दस बजे से करवटें बदलते उसने ग्यारह बजते सुने, फिर बारह। सीमा के लौटकर आने तक उसके बाद भी पंद्रह-बीस मिनट गुजर चुके थे।

सीमा को कोई छोड़ने के लिए साथ आया था। सीमा ने आकर घंटी नहीं बजाई, जिसका मतलब था फ्लैट की एक चाबी उसके पास भी थी। और बीजी ने आने के दिन ही उससे कहा था कि घर में एक ही चाबी है, दूसरी चाबी उन्हें बनवानी पड़ेगी। इसका भी अर्थ यही था कि शुरू से ही उसे वहां एक अस्थायी मेहमान से ज्यादा कुछ माना ही नहीं गया था।

साथ आया व्यक्ति कुछ देर गैलरी में रुका रहा। कुछ अस्पष्ट स्वर में कहे गए शब्द, एक हल्की खिलखिलाहट और दो-दो बार की गई 'गुड नाइट।' सीमा अन्दर आते ही हल्के से उसकी तरफ मुसकराकर सीधे

'यहां से बाहर अलग कमरे की ?'

'नहीं, इसी घर में एक अलग कमरे की।'

'मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी।' सीमा ने ड्रेसिंग टेबल की दराज से छोटी तौलिया निकाल लिया और उससे होंठों से लिपस्टिक साफ करने लगी।

'मेरा मतलब है मुझे इस घर में अपने लिए एक ऐसी जगह चाहिए, जहां से तुम्हारे कपड़े बदलने के वक्त मुझे उठकर बाहर न जाना पड़े।'

'मैंने तुमसे जाने को नहीं कहा था,' सीमा ने तौलिया दराज में पटककर दराज बंद कर दिया, 'मुझे तुम्हारे सामने कपड़े बदलने में कोई एतराज नहीं है। यू आर नाट ए मैन।'

श्यामा को अपनी सांस खिचती महसूस हुई, 'मैं तुम्हारे एतराज की बात नहीं कर रही। मुझे एतराज है।'

'आई सी।' सीमा आंखों में सुरमा डालने लगी।

'तुम्हीं ने सुबह कहा था, हम सबकी अपनी-अपनी जिंदगी है और हमें उसे अपने-अपने ढंग से जीना चाहिए, क्योंकि हम लोगों के ढंग एक-दूसरे से अलग हैं, इसलिए...।'

सीमा ने अब पहली बार सीधे उसकी तरफ देखा, 'तुम यह बात कहने के लिए ही अब तक जाग रही थीं ?'

सीमा की आंखों के भाव से श्यामा का स्वर पहले से सख्त हो गया, 'मुझे बात करनी थी, इसीलिए जाग रही थी। तुम्हें अपने ढंग से जीने का जितना अधिकार है, उतना ही दूसरों को भी है। तुम्हें पता है, घर हम लोगों का साझा है।'

सीमा कुछ देर चुप रहकर उसे देखती रही फिर नाइटी में बांहें उलझाए स्टूल खींचकर पलंग के पास ले आई, 'घर में सिर्फ दो ही कमरे हैं, यह तुम्हें पता है।'

फिर वही कब्र वाली गन्ध। श्यामा और कस गई, 'पता है इसीलिए तो बात करने की जरूरत है।'

'तुम्हारा मतलब है, तुम इस कमरे में अकेली रहोगी और मैं ममी के साथ उस कमरे में ?'

'मैं भी अकेली इस कमरे में नहीं रहूंगी। बेबी मेरे साथ इसी कमरे में सोया करेगी।'

सीमा के चेहरे पर सुर्खी दौड़ गई थी। मुंह खुला रहने से उसका चेहरा भी कुछ-कुछ बीजी के नींद के चेहरे जैसा लग रहा था. 'मैं बीजी के साथ उस कमरे में नहीं सो सकती' कहते हुए उसने अपना ब्रेसियर

तुम्हारे इस हठ की वजह क्या है ?'

लड़की के चेहरे और आंखों में एक-सी चमक थी। श्यामा के अंदर ईर्ष्या के कई एक घूंट उतर गए, 'वजह सिवाय इसके क्या हो सकती है कि कल तक मैं अपने मन में अनिश्चित थी कि मुझे यहां रहना चाहिए या नहीं और आज मैंने फैसला कर लिया है ।'

'फैसले के पीछे भी तो कोई वजह होगी ?'

'मैंने कहा है, मैंने स्कूल में बेबी का एडमिशन करा दिया है आज।'

'एडमिशन कराना तो फैसला ही है। मैं तुमसे वजह पूछ रही थी।'

श्यामा को लगा, यह उसे कोने में खड़ा करने की कोशिश है। उसने सामना करने की अपनी शक्तियां इकट्ठी कर लीं, 'वजह लड़की का भविष्य है। मैंने अकेले रहने की आदत डाल ली है, पर मैं नहीं चाहती कि उसे भी वहां रहकर यही आदत डल जाए।'

सीमा ने उसके घुटने पर हाथ रखकर जैसे एक नयी आत्मीयता का विजिटिंग कार्ड उसकी तरफ बढ़ा दिया, 'तुम फ्रैंक नहीं हो। मैं तुमसे फ्रैंकली बात कर रही हूं। तुम यहां नहीं थीं, मैं कभी तुम्हारे बारे में ज्यादा नहीं सोचती थी। तुम सचमुच यहां आकर रहना चाहोगी, इस पर भरोसा ही नहीं होता था। लगता था कि आओगी, तो महीना-बीस दिन काटकर चली जाओगी। बुरा मत मानना, पर जिस तरह इतने सालों से तुमने अपने को काट रखा था, उससे फ्लैट के लिए तुम्हारे रुपया भेजने पर भी इस तरह की प्राबलेम दिमाग में आती ही नहीं थी, पर आज मैं सोच सकती हूं कि तुमने जो इतना सब तरद्दुद किया, उसके पीछे तुम्हारी अपनी कुछ जरूरत हो सकती है। हम एक-दूसरे की जरूरत को समझकर रह सकें, तो यह मुश्किल बीच से निकल जा सकती है।'

श्यामा की सांस तेज होने लगी। उसने अपना घुटना सीमा के हाथ के नीचे से हटा लिया, 'मुझे लगता है पिछली बार जब मैं तुमसे मिली थी तब से अब के बीच तुम कुछ ज्यादा ही बड़ी हो गई हो।'

सीमा ने उसके झटकने को महसूस किया, पर कोशिश से उसे झेल लिया, 'तुम मेरी तरह खुलकर बात नहीं करोगी, तो चीजें सुलझ नहीं सकेंगी। जरूरत पड़ने पर मैं यहां से छोड़कर गर्ल्स होस्टल में जा सकती हूं, लेकिन सवाल ममी का है। न तो तुम अकेले उन्हें सपोर्ट कर सकती हो, न मैं ही। इसलिए बेहतरी सबकी साथ रहने में है। मैं पहले तुम्हें अपनी प्राबलेम बता देती हूं। मैं यहां मम्मी के साथ रहते हुए भी एक तरह से उनके साथ नहीं रहती, क्योंकि छोटी-छोटी बातों को लेकर उनका चिड़-चिड़ाना मुझे बरदाश्त नहीं है। इन दो कमरों में साथ रहने के अलावा

गोपाल जी। 'पिलीड अपान माई स्वीट लव्'ज राइपनिग ब्रेस्ट'। सिंदूरी। जेनी। दरबान। लेडी डाक्टर वत्रा। रमेश्वरी। सबकी आंखों का, शब्दों का, एक ही अर्थ। 'यू आर स्टिल यंग एंड।' तीन तरफ से पुरुष शरीरों का एक-सा दबाव। पीठ पर, जांघ पर, कमर के पास। 'यू आर स्टिल यंग एंड।'

सीमा तड़पकर उसके पास से उठ खड़ी हुई। श्यामा के दिमाग का भंवर किसी अन्दर की सतह में डूब गया। उनका हाथ एक बार उन सब चेहरों से जा टकराया था। हांफते हुए उसने देखा, जिस चेहरे पर उंगलियों के निशान उभर आए हैं, वह चेहरा सीमा का है।

'यू...यू...यू...।' सीमा की आवाज नुकीली हो आई थी।

श्यामा पल-भर देखती रही, जैसे सीमा के गाल पर लगा तमाचा किसी और का हो। फिर सहसा उसके मन में खेद भर आया। यह क्या कर दिया उसने? 'आई एम सारी!' यह उसने जैसे सीमा से नहीं, अपने से कहा। शरीर में उसे ऐसे शिथिलता महसूस होने लगी, जैसे उसी को किसी ने पीटकर वहां डाल दिया हो।

'अपनी यह पारसाई तुम किसे दिखाना चाहती हो? मुझे?' सीमा के स्वर का नश्तर उसे अन्दर तक काटता गया, 'वहां अकेली रहकर क्या करती हो, इसका तुम समझती हो किसी को पता नहीं है?'

श्यामा के माथे पर पसीने की बूंदें झलक आईं, 'अच्छा हो अगर अब रात-भर के लिए सो रहें। और जो बात करनी हो, सुबह कर लेना।' उसकी आवाज उत्तरोत्तर कमजोर पड़ती गई।

'यह किसकी चिट्ठी है?' सीमा ने अलमारी से एक पुराना लिफाफा निकाल लिया, 'तुम्हारी या किसी और की? कौन है, जिसे वहां दशहरा देखने के लिए बुलाया था?'

लिफाफा श्यामा के मुंह से आ टकराया। तमाचे के बदले में तमाचा। वह पथराई आंखों से सामने देखती रही। एकदम सन्नाटा। सारी आवाजें एक-साथ कहां गुम हो गईं? दीवार। अलमारी। ड्रेसिंग टेबल। स्टूल। सीमा। पलंग। वह। कांपता हाथ। लिफाफा। कल कुमार से मिलने जाते समय लिफाफा सूटकेस से क्यों निकाला था? फिर रात को उसे अलमारी में कपड़ों की तह के अन्दर क्यों छोड़ दिया था?

उसने कहना चाहा कि किसी की चिट्ठी निकालकर पढ़ना कमीनी हरकत है, पर इससे पहले कि एक शब्द भी कह पाती, एक प्रेत-सी छाया दरवाजे से हट गई। उसकी आंखें दरवाजे के बाहर बेंत की खाली कुर्सी पर अटक रहीं। बीजी कब से वहां खड़ी थीं, वह अनुमान नहीं लगा सकी।

गोपाल जी। 'प्लीज अपान माई स्वीट लव्'ज राइपनिंग ब्रेस्ट'। सिंदूरी। जेनी। दरबान। लेडी डाक्टर बत्रा। रमेश्वरी। सबकी आंखों का, शब्दों का, एक ही अर्थ। 'यू आर स्टिल यंग एंड।' तीन तरफ से पुरुष शरीरों का एक-सा दबाव। पीठ पर, जांघ पर, कमर के पास। 'यू आर स्टिल यंग एंड।'

सीमा तड़पकर उसके पास से उठ खड़ी हुई। श्यामा के दिमाग का भंवर किसी अन्दर की सतह में डूब गया। उसका हाथ एक बार उन सब चेहरों से आ टकराया था। हांफते हुए उसने देखा, जिस चेहरे पर उंगलियों के निशान उभर आए हैं, वह चेहरा सीमा का है।

'यू...यू · यू...।' सीमा की आवाज नुकीली हो आई थी।

श्यामा पल-भर देखती रही, जैसे सीमा के गाल पर लगा तमाचा किसी और का हो। फिर सहसा उसके मन में खेद भर आया। यह क्या कर दिया उसने? 'आई एम सारी!' यह उसने जैसे सीमा से नहीं, अपने से कहा। शरीर में उसे ऐसे शिथिलता महसूस होने लगी, जैसे उसी को किसी ने पीटकर वहां डाल दिया हो।

'अपनी यह पारसाई तुम किसे दिखाना चाहती हो? मुझे?' सीमा के स्वर का नश्तर उसे अन्दर तक काटता गया, 'वहां अकेली रहकर क्या करती हो, इसका तुम समझती हो किसी को पता नहीं है?'

श्यामा के माथे पर पसीने की बूंदें झलक आईं, 'अच्छा हो अगर अब रात-भर के लिए सो रहें। और जो बात करनी हो, सुबह कर लेना।' उसकी आवाज उत्तरोत्तर कमजोर पड़ती गई।

'यह किसकी चिट्ठी है?' सीमा ने अलमारी से एक पुराना लिफाफा निकाल लिया, 'तुम्हारी या किसी और की? कौन है, जिसे वहां दशहरा देखने के लिए बुलाया था?'

लिफाफा श्यामा के मुंह से आ टकराया। तमाचे के बदले में तमाचा। वह पथराई आंखों से सामने देखती रही। एकदम सन्नाटा। सारी आवाजें एक-साथ कहां गुम हो गईं? दीवार। अलमारी। ड्रेसिंग टेबल। स्टूल। सीमा। पलंग। वह। कांपता हाथ। लिफाफा। कल कुमार से मिलने जाते समय लिफाफा सूटकेस से क्यों निकाला था? फिर रात को उसे अलमारी में कपड़ों की तह के अन्दर क्यों छोड़ दिया था?

उसने कहना चाहा कि किसी की चिट्ठी निकालकर पढ़ना कमीनी हरकत है, पर इससे पहले कि एक शब्द भी कह पाती, एक प्रेत-सी छाया दरवाजे से हट गई। उसकी आंखें दरवाजे के बाहर बेंत की खाली कुर्सी पर अटक रहीं। बीजी कब से वहां खड़ी थीं, वह अनुमान नहीं लगा सकी।

एनी कम्यूनिकेशन फ्राम योर साइड।'

रूवी के चेहरे पर हलकी झाइयां क्यों हैं? डिक्टेशन लेते वक्त वह वैसी क्यों नहीं लगती, जैसी उस दिन कैंटीन के बाहर? उसके सामने आकर वह भी फ्लास्क में बन्द क्यों हो जाती है?

वर्ली सी फेस पर ऊंची उठती लहरें। लहरों में डूबता-उतराता शरीर। सी फेस के साथ-साथ कारों की लम्बी पंक्ति। शरीर एक एम्बुलेंस में डाला जा रहा है। ट्रैफिक की भीड़ में से एम्बुलेंस तेजी से गुजरती जाती है। श्यामा अपने बेबस हिलते शरीर को देखकर डरी हुई है। वह एम्बुलेंस के दरवाजे पर दस्तक दे रही है, मुझे अपना पोस्ट-मार्टम नहीं चाहिए। ट्रैफिक सिग्नल। सिनेमा के बड़े-बड़े होर्डिंग। ट्रांजिस्टरों की ऊंची आवाजें। रंग-बिरंगी रोशनियां। मेजों पर पटकी जा रही तश्तरियां। राइस प्लेट आलू चाहे।

पोस्ट-मार्टम के लिए ले जाया जाता शरीर सरकारी अफसर का है। अर्थात् उसका अपना। साथ तीन लड़के हैं। ये लड़के किसकी औलाद हैं? एक लड़का कह रहा है, बाबा दफ्तर की केबिन में स्टेनो को डिक्टेशन दे रहे थे, जब अचानक—। 'वी मे फर्दर ड्रा योर अटेंशन दैट।' पोस्ट-मार्टम की टेबल पर चीर-फाड़ होने वाली है। रोशनियां जला दी गई हैं। 'एकार्डिंग टु सेक्शन नाइन ए आफ अवर एग्रीमेंट।'

अचानक दरवाजे का खुलना और श्यामा का सामने आ खड़ी होना उसे कुछ अटपटा-सा लगा। उसके और रूबी के बीच का स्विच झटके से आफ हो गया, 'अरे!'

श्यामा उसकी हड़बड़ी पर मुसकरा दी, 'मैंने डिस्टर्ब तो नहीं किया?'

'नहीं-नहीं, आओ, बैठो।'

श्यामा के बैठने के साथ ही रूबी ने कापी-पेंसिल समेट ली, 'शैल आई···!'

'हां, तुम अब थोड़ी देर में···नहीं, रहने दो कल तक। इस वक्त शायद मुझे बाहर जाना पड़े।'

रूबी चली गई। श्यामा सामने की कुर्सी पर बैठ गई। कहीं बाहर जा रहे हो?'

'नहीं, हां सोच रहा था शायद···।'

'मेरे साथ जाना पड़े?'

पहली नजर में लगा था, श्यामा काफी बदल गई है। चेहरा उसका पहले से दुबला लगा था, रंग ज्यादा सांवला, पर मेज के उस तरफ बैठी

बारी। लो अब तुम्हारी। आखिर श्यामा ने ही बात उठाई, 'यहां जी लग गया है?'

कुमार ने होंठ सिकोड़कर खोल लिए, 'यह सब सोचता नहीं। सोचने की फुरसत नहीं रहती।'

चाय इतनी गरम थी कि श्यामा को होंठ छुआते ही हटा लेना पड़ा, फिर भी वह आंखों को प्याली की टेक दिए उसे देखती रही, 'दूसरी तरफ हम-जैसे लोग हैं जिन्हें सिवाय सोचने के कोई काम ही नहीं रहता।'

'कम से-कम देखने से तो ऐसा नहीं लगता।' यह पुरुषोचित शिष्टाचार श्यामा के चेहरे को छू गया। चेहरे की रंगत बदल गई, 'देखने में बिलकुल जड़ नजर आती हूं।'

'इसका मतलब है जो लोग नहीं सोचते, वे ··?'

श्यामा हंस दी। बंधी-बंधी-सी हंसी, 'तुम्हारे चेहरे से तो लगता है, रात-दिन तुम्हें चिन्ताएं-ही-चिन्ताएं घेरे रहती हैं।'

कुमार कुछ देर चुप रहकर दीवार पर बनी आकृतियों को देखता रहा। उन आकृतियों से जोड़कर श्यामा को। जैसे वह भी उन्हीं की तरह दीवार पर अंकित आकृति हो, फिर बोला, 'काम से सिर इस तरह पथराया रहता है कि समझ में नहीं आता, दिमाग में कुछ सोचने की शक्ति रह भी गई है या नहीं।'

श्यामा का हाथ जरा-सा हिला। उसकी तरफ बढ़ आने को, पर अपनी जगह पर रुका रह गया, 'तुम्हारी उसका क्या हाल है?'

'किसका?'

'कलकत्ते में ही है?'

'वह? शायद मद्रास में है। किसी से पता चला था!'

'खुश है?'

'खुश ही होगी। दो-एक बच्चे भी हो गए हैं अब तक।'

'बच्चे तो ,' श्यामा अटक गई। चेहरे की रंगत फिर बदल गई। उसने चाय के दो-एक घूंट भर लिए।

'क्या कह रही थीं?'

'बच्चे अपनी जगह हैं। आदमी को उसके अलावा भी तो खुशी की जरूरत होती है।'

कुमार की उंगलियों ने प्याली के हत्थे का सहारा ले लिया, 'मुझे तो यह सब सोचना ही बेकार लगता है। जो खुश रह सकते हैं, वे खुशी की परिभाषा नहीं ढूंढ़ते। जिन्हें खुशी नहीं मिलती, वही इस बारे में चिन्ता किया करते हैं।'

नहीं कर पा रहे थे।

'उस दिन तुम्हें दिखाने के लिए मैं वह पत्र साथ लाई थी,' मेज पर गिरी चाय की बूंदों से उंगलियां छुआ-छुआकर श्यामा लकीरें खींचने लगी, 'पर तुम शायद आकर चले गए थे या···।

'तुम आई थीं उस दिन ?' श्यामा सिर हिलाकर चुप रही।

'मैं छह बीस तक इन्तजार करके गया था यहां से।'

श्यामा के होंठ पल-भर खुले रहकर बन्द हो गए, 'मुझे लगा था कि···।'

साथ आडिटोरियम में शो शुरू हो रहा था। चाय-सम्बन्धी फिल्में और विज्ञापन। पास की मेज पर बैठा एक आदमी जम्हाई रोककर घड़ी देखता उधर चला गया, 'यहां से और कहीं चलें ?' कुमार की आंखों में अस्थिरता भर आई थी।

'कहां ?'

'किसी दूसरे रेस्तरां में या बाहर फुटपाथ पर ही।'

'क्यों ?'

'ऐसे ही। बैठे-बैठे एक जगह से मन उखड़ जाता है।'

'मन जगह से उखड़ रहा है या··· ?'

कुमार ने घड़ी के फीते को कलाई पर घुमा लिया, 'तुम्हें गलत लगा है। मुझे आदत हो गई है कि दफ्तर के सिवा और किसी जगह देर तक नहीं बैठ पाता। यह एक जगह थी जहां कभी बैठ लिया करता था, पर उस दिन यहां भी नहीं बैठा गया और आज भी लग रहा है कि ।'

'दोनों बार की वजह एक ही नहीं हैं ?'

'वजह तुम नहीं हो। अगर सचमुच कोई वजह है, तो वह अपना-आप ही है।'

श्यामा की उंगली ने मेज पर पानी की कितनी ही जालियां बना दी थीं। अब वह दायरे खींच-खींचकर जालियों को मिटा रही थी। इतनी सावधानी से कि कहीं कोई रेखा बनी न रह जाए। सब मिट जाएं, यहां तक कि गोलाइयों की रेखाएं भी। 'उतावलापन उन दिनों भी तुम्हारे स्वभाव में कम नहीं था।' वह ध्यान उंगली पर केन्द्रित किए रही।

'तुम उतावलापन कह लो, लेकिन उतावलापन से ज्यादा पता नहीं क्या चीज है, कह नहीं सकता।'

'उस दिन तुम्हें अच्छा लगा था मैं नहीं आई ?'

कुमार अन्दर से चौंक गया। यह बात श्यामा ने किस तरह जान ली थी ? 'यह क्यों पूछा तुमने ?'

नहीं कर पा रहे थे।

'उस दिन तुम्हें दिखाने के लिए मैं वह पत्र साथ लाई थी,' मेज पर गिरी चाय की बूंदों से उंगलियां छुआ-छुआकर श्यामा लकीरें खींचने लगी, 'पर तुम शायद आकर चले गए थे या···।

'तुम आई थीं उस दिन ?' श्यामा सिर हिलाकर चुप रही।

'मैं छह बीस तक इन्तजार करके गया था यहां से।'

श्यामा के होंठ पल-भर खुले रहकर बन्द हो गए, 'मुझे लगा था कि···।'

साथ आडिटोरियम में शो शुरू हो रहा था। चाय-सम्बन्धी फिल्में और विज्ञापन। पास की मेज पर बैठा एक आदमी जम्हाई रोककर घड़ी देखता उधर चला गया, 'यहां से और कहीं चलें ?' कुमार की आंखों में अस्थिरता भर आई थी।

'कहां ?'

'किसी दूसरे रेस्तरां में या बाहर फुटपाथ पर ही।'

'क्यों ?'

'ऐसे ही। बैठे-बैठे एक जगह से मन उखड़ जाता है।'

'मन जगह से उखड़ रहा है या··· ?'

कुमार ने घड़ी के फीते को कलाई पर घुमा लिया, 'तुम्हें गलत लगा है। मुझे आदत हो गई है कि दफ्तर के सिवा और किसी जगह देर तक नहीं बैठ पाता। यह एक जगह थी जहां कभी बैठ लिया करता था, पर उस दिन यहां भी नहीं बैठा गया और आज भी लग रहा है कि ।'

'दोनों बार की वजह एक ही नहीं है ?'

'वजह तुम नहीं हो। अगर सचमुच कोई वजह है, तो वह अपना-आप ही है।'

श्यामा की उंगली ने मेज पर पानी की कितनी ही जालियां बना दी थीं। अब वह दायरे खींच-खींचकर जालियों को मिटा रही थी। इतनी सावधानी से कि कहीं कोई रेखा बनी न रह जाए। सब मिट जाएं, यहां तक कि गोलाइयों की रेखाएं भी। 'उतावलापन उन दिनों भी तुम्हारे स्वभाव में कम नहीं था।' वह ध्यान उंगली पर केन्द्रित किए रही।

'तुम उतावलापन कह लो, लेकिन उतावलापन से ज्यादा पता नहीं क्या चीज है, कह नहीं सकता।'

'उस दिन तुम्हें अच्छा लगा था मैं नहीं आई ?'

कुमार अन्दर से चौंक गया। यह बात श्यामा ने किस तरह जान ली थी ? 'यह क्यों पूछा तुमने ?'

नहीं कर पा रहे थे।

'उस दिन तुम्हें दिखाने के लिए मैं वह पत्र साथ लाई थी,' मेज पर गिरी चाय की बूंदों से उंगलियां छुआ-छुआकर श्यामा लकीरें खींचने लगी, 'पर तुम शायद आकर चले गए थे या...।'

'तुम आई थीं उस दिन ?' श्यामा सिर हिलाकर चुप रही।

'मैं छह बीस तक इन्तजार करके गया था यहां से।'

श्यामा के होंठ पल-भर खुले रहकर बन्द हो गए, 'मुझे लगा था कि...।'

साथ आडिटोरियम में शो शुरू हो रहा था। चाय-सम्बन्धी फिल्में और विज्ञापन। पास की मेज पर बैठा एक आदमी जम्हाई रोककर घड़ी देखता उधर चला गया, 'यहां से और कहीं चलें ?' कुमार की आंखों में अस्थिरता भर आई थी।

'कहां ?'

'किसी दूसरे रेस्तरां में या बाहर फुटपाथ पर ही।'

'क्यों ?'

'ऐसे ही। बैठे-बैठे एक जगह से मन उखड़ जाता है।'

'मन जगह से उखड़ रहा है या...?'

कुमार ने घड़ी के फीते को कलाई पर घुमा लिया, 'तुम्हें गलत लगा है। मुझे आदत हो गई है कि दफ्तर के सिवा और किसी जगह देर तक नहीं बैठ पाता। यह एक जगह थी जहां कभी बैठ लिया करता था, पर उस दिन यहां भी नहीं बैठा गया और आज भी लग रहा है कि ।'

'दोनों बार की वजह एक ही नहीं है ?'

'वजह तुम नहीं हो। अगर सचमुच कोई वजह है, तो वह अपना-आप ही है।'

श्यामा की उंगली ने मेज पर पानी की कितनी ही जालियां बना दी थीं। अब वह दायरे खींच-खींचकर जालियों को मिटा रही थी। इतनी सावधानी से कि कहीं कोई रेखा बनी न रह जाए। सब मिट जाएं, यहां तक कि गोलाइयों की रेखाएं भी। 'उतावलापन उन दिनों भी तुम्हारे स्वभाव में कम नहीं था।' वह ध्यान उंगली पर केन्द्रित किए रही।

'तुम उतावलापन कह लो, लेकिन उतावलापन से ज्यादा पता नहीं क्या चीज है, कह नहीं सकता।'

'उस दिन तुम्हें अच्छा लगा था मैं नहीं आई ?'

कुमार अन्दर से चौंक गया। यह बात श्यामा ने किस तरह जान ली थी ? 'यह क्यों पूछा तुमने ?'

क्या नतीजा है ? कुछ बाल सफेद हो गए हैं, यह ?'

श्यामा के स्वर में एक प्रश्न था, जिसे वह शब्दों में नहीं रख रही थी। कुमार अपने से संघर्ष कर रहा था कि जिस क्षण उसे बात को उड़ेल देना चाहिए, वह क्षण यह नहीं है, 'तुम ठहरी कहां हो ?'

'सैंटा क्रुज।'

'कोई परिचित है वहां ?'

'घर के लोग हैं। बीजी और सीमा पूना से यहां आ गई हैं।'

'तो घर अब यहीं है ?'

'कह भी सकते हो।'

कुमार को लगा कि जितना उसने अपने में रोक रखा है, श्यामा शायद उससे ज्यादा रोके हुए है 'इन दिनों छुट्टी बिताने आई थीं ?'

श्यामा ने अनिश्चित भाव से उसे देखते हुए सिर हिला दिया।

'छुट्टी काफी बाकी होगी ?'

'हां, लेकिन,' कुमार देखता रहा, 'तय नहीं कितने दिन और रहूंगी।'

'क्यों ?'

श्यामा की आंखें उस पर स्थिर हो गईं। 'क्योंकि साथ रहना निभेगा नहीं। फ्लैट हालांकि इसीलिए खरीदा था कि वहां से बिलकुल छोड़कर आ जाना चाहती थी।'

'तुमने फ्लैट खरीदा है ?'

'साझा फ्लैट है। मेरे और बीजी के नाम से।'

'फिर भी लौट जाने की सोच रही हो ?'

'सोच कितना कुछ रही हूं, पर होगा क्या, यह अभी नहीं कह सकती।' कुमार ने उंगलियों से पकड़कर उसका हाथ थोड़ा ऊपर उठाया, तो वह बेजान-सा उठ गया। रख दिया, तो उसी तरह नीचे रह गया। कुमार कई साल पीछे जाकर कुछ क्षण वहां रुका रहा।

'तुम्हें लौटने की जल्दी तो नहीं है ?'

'एक तरह से है ही।'

'माने ?'

'उधर के खयाल से। देर हो जाने से···। अच्छा है, तुमसे मिल लिया। इसके बाद पता नहीं।'

'आजकल में ही तो नहीं जा रही हो ?'

'कुछ भी पता नहीं। देखना होगा।'

'तो···?'

'बिल मंगवा लो। अब चलना चाहिए।' श्यामा ने जिस तरह अपने

भीड़ को लांघती भीड़। रफ्तार को काटती रफ्तार। आसपास की मद्धिम आवाज। बाहर का तीखा शोर। और उस सबके बीच अपने अन्दर की धुकधुकी। श्यामा का टिकट उसकी जेब में है और श्यामा साथ के डब्बे में है। उसे बांद्रा पहुंचकर जैसे-तैसे जल्दी से नीचे उतरना है और टिकट श्यामा को दे देना है। उन दोनों के बीच शायद अब इतना ही सम्बन्ध, इतनी ही घटना शेष है। एक पीछे को दौड़ता प्लेटफार्म, बांबे सेंट्रल। दूसरा, महालक्ष्मी। खट् खटाक्-खट्, खटाक्-खट्-खटाक्। बांद्रा तक कितने प्लेटफार्म और निकलेंगे ?

कुमार ने अपना ध्यान अपने डब्बे तक सीमित कर लेना चाहा। एक राजनीतिक बहस। अगले चुनाव के बाद महाराष्ट्र का मुख्यमन्त्री कौन होगा ? शिव सेना को चुनाव में कितनी सीटें मिलेंगी ? बांबे साउथ कान्स्टीचुएंसी से इस बार कौन जीतेगा ? एक घुड़दौड़-सम्बन्धी मतभेद। कल की तीसरी घुड़दौड़ में कौन-सा घोड़ा आगे आएगा ? इस बार का जैक पाट कितने का होगा ? साथ के डब्बे की समस्याएं कौन-सी थीं ? वहां की राजनीति क्या थी ? खटाक्-खटाक्-खटाक्।

गाड़ी की रफ्तार धीमी होने के साथ ही वह दरवाजे की तरफ बढ़ने लगा, फिर भी उतरने में उसे काफी समय लगा। उतरकर साथ के डब्बे में देखा, तो श्यामा कहीं नजर नहीं आई। गाड़ी व्हिसल देकर आगे चल दी। अब श्यामा के टिकट का क्या होगा ? 'गाड़ी में कुछ खो गया है क्या?' उसने घूमकर देखा। श्यामा उसके पास ही खड़ी थी।

'तुम उतर गईं ? मैं सोच रहा था कि —।'

'सोच रहे थे और देख नहीं रहे थे। मैं तुमसे पहले से उतरकर खड़ी हूं।'

कुमार ने टिकट निकालकर उसकी तरफ बढ़ा दिया, 'उस वक्त जल्दी में तुम्हें दे नहीं सका। अभी दो-चार मिनट में दूसरी गाड़ी आ जाएगी।'

'यहां कोई बैठने की जगह नहीं है ?'

'यहां ?'

'नहीं है ?'

'स्टेशन के बाहर बहुत-सी जगहें हैं।'

'तुम्हारा घर दूर है ?'

'दूर ही है। बस से पन्द्रह मिनट का रास्ता है।'

'और टैक्सी से ?'

'छह-सात मिनट का।' श्यामा की उंगलियां टिकट के किनारों पर घूम रही थीं, जैसे कि उसकी धार देख रही हों। उसकी आंखें इंडीकेटर

नहीं रखा ?' उसने पूछ लिया।

'एक बहुत अच्छा नौकर था, पर वह इस बात से नाखुश होकर छोड़ गया कि उसके लिए इस घर में काफी काम नहीं है।'

एक कुर्सी से कपड़े हटाकर उसने श्यामा के लिए बैठने की जगह कर दी, पर श्यामा बैठने से पहले बाहर बालकनी पर चली गई। नीचे थोड़े फासले पर सड़क के उस तरफ समुद्र था। ढलते दिन का पीलिया हर चीज पर फैल गया था। बड़ी-बड़ी मछलियों-से साये सड़क के आरपार फैले थे। सड़क पर गाड़ियां थीं, लोग भी थे, फिर भी लग रहा था, जैसे समुद्र और बालकनी के बीच सिवाय खालीपन के कुछ न हो।

वह लौटकर कमरे में आई, तो देखा कुमार ने स्टोव पर केतली रख दी है और स्लाइस काटने की कोशिश कर रहा है। स्लाइस बहुत भद्दे ढंग से कट रहे थे, रोटी दाना-दाना होकर बिखर रही थी। श्यामा सीधे उसके पास चली गई, 'लाओ, मैं काट देती हूं।' उसने कुमार के हाथ से चाकू ले लिया।

'मुझे आज तक रोटी काटना नहीं आया।' कुमार झेंप मिटाने के लिए हंसने लगा।

'तुम बैठ जाओ। मैं चाय बनाकर ले आती हूं।'

'मैं थोड़ी मदद तो कर ही सकता हूं।'

'कहा है, तुम बैठ जाओ। तुम जिस तरह की मदद करोगे, उसके बगैर भी चल सकता है।' कुमार कुर्सी पर आ गया। श्यामा ने नये स्लाइस काटकर मक्खन लगाया और प्यालियां धोकर उनमें चाय डाल ली, फिर इधर-उधर देखकर पूछा, 'दूध कहां है ?'

कुमार उठ खड़ा हुआ, 'दूध शायद नहीं है। मैं अभी जाकर ले आता हूं।'

'अब रहने दो। इसी तरह पी लेंगे।' श्यामा प्लेट और प्यालियां ट्रे में रखकर ले आई, 'रखने की कोई जगह भी तो नहीं है,' उसने पूरे कमरे पर फिर एक नजर डाल ली, 'अब कह दो कि अभी जाकर एक तिपाई ले आता हूं।'

'तिपाई है, कुमार ने जाकर कोने में रखी तिपाई से जल्दी-जल्दी किताबें हटाईं और उसे उठाकर पलंग और कुर्सियों के बीच ले आया, 'यह लो।'

ट्रे रखकर श्यामा पलंग पर बैठ गई, 'मैं सोचती थी मैं ही इस तरह फूहड़ ढंग से रहती हूं, पर तुम तो मुझसे भी···।'

उनकी आंखें देर तक मिली रहीं। जैसे कोई शुरुआत [illegible] थी

'फिर ?'

'निभा नहीं।'

'क्यों ?'

'नहीं निभा।'

'इस तरह अपनी तो जिंदगी ख्वार कर ही रहे हो, साथ में उसकी भी।'

'सिवाय अपने आदमी किसी की जिंदगी ख्वार नहीं करता,' कुमार के स्वर में तीखापन आ गया, 'अगर किसी को लगता हो, उसकी जिन्दगी दूसरे की वजह से ख्वार हो रही है, तो उसे वदल लेने का हक उससे किसी ने नहीं छीना।'

'यह इतना ही आसान है क्या ?' श्यामा को लगा उसका स्वर अस्वाभाविक हो गया है।

'आसान नहीं है, यह भी एक झूठा विश्वास नहीं ? दो आदमी जिस आसानी से जिन्दगी-भर के रिश्ते में अपने को वांध सकते हैं, उसी आसानी से उससे मुक्त क्यों नहीं हो सकते ? इसलिए कि वांधने में उन्हें समाज का समर्थन प्राप्त था और मुक्त होने में वे अपने को अकेले महसूस करते हैं ?'

श्यामा की आंखों में विद्रोह और तिरस्कार का भाव आया, जो तुरन्त ही आत्मीयता के भाव से ढक गया, 'देखो, मैंने उसे देखा नहीं और न ही उसके वारे में कुछ जानती हूं। न जानने के कारण विश्वास ही नहीं होता कि कोई है, जिसके साथ तुमने उस तरह की स्थिति को भोगा है या उसके बीच से होकर निकले हो, पर यह तुम कैसे कहते हो कि दो व्यक्ति उस विशेष सम्बन्ध से एक-दूसरे के निकट आने, साथ रहने और कई-कई क्षण साथ वांटने के वाद भी एक-दूसरे से कोरे हो सकते हैं ?'

कुमार श्यामा के चेहरे के उतार-चढ़ाव को देखता कुछ देर चुप रहा। फिर वोला, 'एक वात पूछूं ?' श्यामा ने आंखें झपक लीं।

'तुम इस तरह अपनी ही जिन्दगी की वकालत नहीं कर रहीं ?'

'मैं डर रही थी, तुम यही वात कह दोगे,' श्यामा का भाव पहले से स्थिर हो गया, 'मैंइन कार नहीं करती कि मेरे यह कहने के पीछे मेरी अपनी जिन्दगी है। पर तुम विश्वास के साथ कह सकते हो कि अकेले रहकर भी तुम उस जिंदगी से कोरे हो सके हो ? आज यहां वैठकर वात करते हुए भी तुम उसके प्रभाव से मुक्त हो ? ऐसा होता, तो तुम्हारे स्वर में इतनी कड़ुआहट न होती।'

कुमार के चेहरे पर फिर विकृत-सी मुसकराहट फैल गई, 'वात लम्वी

मुझ पर लगाती हो, पर समझौता छह महीने से ज्यादा नहीं चल पाया, इतनी-सी बात है।'

श्यामा जितना सुन रही थी, उससे ज्यादा अपनी आंखों से [illegible] बदलते भाव से कहना चाह रही थी, 'यह केवल एक पक्ष है, तुम्हारा पक्ष, पर दूसरे का भी तो अपना पक्ष हो सकता है?'

शब्दों की अदालती ध्वनि ने कुमार की बेरुखी और बढ़ा दी, 'उसका पक्ष इतना ही था कि किसी ने बहुत दिन लटका रखने के बाद उससे कन्नी काट ली थी और वह जल्दी-से-जल्दी ब्याह करके उस व्यक्ति को नीचा करना चाहती थी। वह उद्देश्य पूरा होने के साथ ही उसके लिए ब्याह का उद्देश्य समाप्त हो गया था। शेष था एक नये व्यक्ति के साथ [illegible] उलझना, जिसके लिए सिवाय विरोध के उसके मन में कोई भावना नहीं थी।'

'वह पहले से तुम्हें जानती नहीं थी?'

'ब्याह से चार महीने पहले तक परिचय नहीं था। उसके पिता के एक मित्र मुझे जानते थे। उनके सुझाव पर ही दोनों ने पहली बार एक-दूसरे को देखा था। देखने के बाद मैंने उस व्यक्ति को लिख दिया था कि मेरी इस सम्बन्ध में रुचि नहीं है। उस पत्र का उत्तर उस व्यक्ति की ओर से नहीं आया। उत्तर आया इसकी ओर से। लिखा था, केवल एक बार चेहरा देखकर व्यक्ति किसी के बारे में राय कैसे बना सकता है? वह शायद मेरी समझौते की ही भावना थी, जिसने मुझसे उस पत्र का उत्तर दिला दिया। उसके बाद उसके कई पत्र आए। पत्रों की भाषा बहुत अच्छी थी। एक पत्र की इतनी अच्छी कि उसे पढ़कर ही मैंने ब्याह की स्वीकृति भेज दी। यह पता बाद में चला कि वह भाषा भिन्न-भिन्न पुस्तकों से नकल की गई थी। उनमें से अधिकतर पुस्तकें उसे भेंट में दी गई थीं, पहले परिचय के दिनों में, उसी व्यक्ति द्वारा।'

श्यामा जड़ होकर उसे देख रही थी। बहुत प्रयत्न से यह बात होंठों पर ला पाई, 'फिर भी जब चाहकर उसने तुमसे ब्याह किया था, तो...?'

'इसका उत्तर तुम्हें वही दे सकती है, मैं नहीं। मुझे उससे सिवाय अपमान के कुछ नहीं मिला। उसे भी मुझसे केवल इतना ही मिला होगा। केवल इतने के भरोसे साथ-साथ जीवन वह शायद ढो सकती थी। मुझसे नहीं ढोया गया।'

'लेकिन...।' श्यामा के स्वर में कुछ था, अटपटा-सा, जिससे कुमार ने अपने से बाहर आकर एक बार उसे देख लिया।

'लेकिन?'

है, उसे सुनकर सोच रही थी कि ··।'

वह स्टोव में हवा भरने लगी। उसके स्वर में एक भीगापन था, जिससे कुमार उठकर उसके पास आ गया, 'क्या सोच रही थीं ?'

'ठक् ठक् ठक् ठक् ।' पंप को धकेलता हाथ और जलते स्टोव का तेज होता शोर। श्यामा ने उसकी तरफ आंखें नहीं उठाईं, 'तुम बैठे रहो वहीं। मैं अभी चाय बनाकर ला रही हूं।'

कुमार फिर भी रुका रहा, 'लेकिन मुझे जानना चाहिए न···।'

श्यामा की आंखों में एक लपक उठकर मद्धिम पड़ गई, 'क्या जानना चाहिए ?'

'कि एकाएक तुम्हारा भाव इस तरह का क्यों हो गया ?'

श्यामा केतली चढ़ाकर चायदानी साफ करने लगी। इस तरह अभ्यस्त ढंग से जैसे वहां खड़े होकर वह सब करना रोज का काम हो। कुमार ने केतली छुड़ाकर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया, 'बताओगी नहीं ?'

'क्या ?'

'कि एकाएक तुम्हें···?'

'मुझे कुछ भी नहीं हुआ एकाएक,' श्यामा ने हाथ छुड़ा लिया, 'तुमसे कहा है, तुम वहां जाकर बैठो।' और वह जाकर तिपाई से प्यालियां उठा लाई।

'अगर तुम्हें मेरी बात से यह लगा है कि···।'

'मुझे तुम्हारी बात से क्या लग सकता था ?' श्यामा लगातार आंखें झपक रही थी और अन्दर से उमड़ आती किसी चीज को पी जाने की कोशिश में थी।

'मैं अपने जीवन की दुर्घटना को लेकर तुम्हें दोषी नहीं ठहरा रहा था।'

बेसिन में नल के खुलने और बंद होने की आवाज। प्यालियों के धुलने की आवाज। 'मैं तुम्हारी दुर्घटना के विषय में नहीं सोच रही थी।'

'अगर यह सोच रही थीं कि एक पुरुष के रूप में मैंने···।'

'संसार में तुम्हीं एक पुरुष नहीं हो।' धुली चायदानी में चाय की पत्ती और ऊपर से उबलता पानी, 'मैं जो बात सोच रही थी, वह किसी और ही को लेकर थी। सोच रही थी कि उस आदमी ने भी मन में जाने क्या सोचकर एक लड़की से ब्याह करने की हामी भरी थी, पर बाद में चलकर उस लड़की से उसे···।'

'तुम्हारा मतलब है···?'

हुई थी ?'

श्यामा ने एक बार पलकें झपक लीं, 'नहीं, खास बात कुछ नहीं हुई। ऐसे ही···।' और वह चलने के लिए उठ खड़ी हुई।

'तुम सचमुच जाना चाह रही हो ?'

'सचमुच नहीं तो क्या ?' कुमार ने अनजाने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया, जैसे उसे रोकने के लिए, पर साथ खुद भी उठ खड़ा हुआ।

'ठीक है। अगर लौट जाने का ही तय किया तुमने, तो जाने से पहले फोन करोगी एक बार ?'

'कह नहीं सकती। कब जाऊंगी, इस पर है। अगर कल-परसों ही जाने का तय कर लिया, तो···।'

कुमार के हाथ का [illegible]व बढ़ गया, 'इसका मतलब है, तुमसे अब भेंट होने की सम्भावना नहीं।'

श्यामा का सिर हिलने के साथ उसका हाथ हटने लगा, तो श्यामा ने अपने हाथ के दबाव से उसे रोक लिया, 'एकाध दिन तो सामान बांधने में ही चला जाएगा। आते हुए इतना सारा सामान साथ उठा लाई थी, फिर बेबी के लिए कुछ शापिंग भी करूंगी शायद।'

कुमार की उंगलियां उसकी उंगलियों में उलझ गईं, 'एक बात तुमने नहीं बताई।' श्यामा सुनने के लिए देखती रही।

'वहां स छोड़कर यहां आ जाने की बात तुमने क्यों सोची थी ?'

'वहां अपने-आप को सहना मुश्किल पड़ रहा था, इसलिए।'

'तो फिर लौटकर जाने से स्थिति वही नहीं रहेगी ?'

श्यामा की आंखें भर आने को हुईं, पर अपने को रोकने के लिए उसने सिर हिला लिया, 'स्थिति तो जो थी, वही रहेगी।'

'तो ?'

'फिर भी लौट जाना है।'

'क्यों ?'

'क्योंकि मन हो रहा है ऐसा।'

कुमार ने अब उसके दोनों हाथों में उंगलियां उलझा लीं, 'पर क्यों हो रहा है ?'

'क्योंकि, पता नहीं। सोचा था मन लग जाएगा यहां. नहीं लगा।'

'पर थोड़ी देर पहले तुमने कहा था कि और भी कुछ सोच रहे हो. अभी तय नहीं है।'

'नहीं, तय ही है अब।'

'वजह उस घर के लोग हैं या··?'

जितना मैं या और कोई व्यक्ति। इसलिए तुम्हारे इस हठ के कोई माने नहीं हैं।'

कुमार के बहुत पास आ गए चेहरे को श्यामा ने फिर भी शब्दों से ही परे हटाने की चेष्टा की, 'आदमी जो कुछ भी करता है, जीने के लिए ही करता है, पर एक और दूसरे के लिए जीने का अर्थ अलग-अलग हो सकता है।'

'तुम्हारे लिए जीने का अर्थ क्या है ? जैसे-कैसे जीवित रह लेना ?'

'और तुम जीने का अर्थ केवल यह समझते हो कि···?' पर श्यामा की बात उसके संघर्ष में खो गई। पहले उसने अपने पैरों का सन्तुलन बनाए रखने का प्रयत्न किया, क्योंकि कुमार की बांहों ने एकाएक उसे अपने में कस लिया था और उसके होंठों को बार-बार चूमते दो होंठ लगातार धौंकनी के-से स्वर में कहे जा रहे थे, 'जीने का अर्थ है···जीने का अर्थ है···।' फिर उसका संघर्ष एक पुरुष के आवेश से बचने के संघर्ष में बदल गया। वह अब अपने पैरों पर नहीं थी, एक शरीर के बोझ के नीचे बिस्तर पर थी जब कि आंख, कान, नाक, होंठ, इन सबके आस-पास वही शब्द दांतों की चुभन के साथ बुदबुदाए जा रहे थे, 'जीने का अर्थ है जीने का अर्थ है··।'

एक अंधेरा-सा था। उस अंधेरे में उसका सिर चकई की तरह घूम रहा था। लगता था अभी वह किसी चीज से टकरा जाएगी, परन्तु टकराने का क्षण आ-आकर निकल जाता था। दो हाथ थे, जो उसकी पीठ और कंधों की खाल में कुछ टटोल रहे थे। जैसे कि खाल के अन्दर उन्हें हड्डियों के जोड़ों को छू लेना था। दो घुटने थे जो उसके घुटनों के ऊपर जांघों के मांस को गूंध रहे थे, 'जीने का अर्थ है ·।' उन घुटनों की कोशिश थी अपनी टकराहट से उसे उधेड़ देने की। उसे निर्णय लेना था। अभी। इसी क्षण। एक क्षण की अतिरिक्त देर होने से पहले।

अंधेरा। अंधेरा घूम रहा है। वह घूम रही है। गाड़ी में शरीर से सटी भीड़ और साथ सटती जा रही है, 'कोई बात नहीं। ऐसा भी हो जाता है कभी।' देव के चेहरे पर कोई शिकन नहीं है। सीमा गाल पर हाथ रखे चिल्ला रही है, 'यू·· यू···यू···।' मिसेज सोहन सिंह बात किए जा रही हैं, 'आई से शामो···!' बेबी बीजी की गोदी में सो गई है। सीमा का इयर रिंग दरवाजे के पास पड़ा है। टेलीफोन पर कुमार का नम्बर नहीं मिल रहा। देव की मरने के समय की टकटकी जिसके सामने कुछ भी नहीं है। कुमार की बस आने का समय हो चुका है। सीमा आईने के सामने खड़ी ब्लाउज की हुकें खोल रही है। खाल में धंसी-सी उसकी रीढ़ के नीचे छोटे-छोटे रोएं हैं। टब के गुनगुने पानी में बुलबुले उठ आए हैं। अंधेरे में आईने

उड़े जा रहे थे। एक-दूसरे में घुल-मिलकर भी एक-दूसरे से अलग और एक-एक पूरी दुनिया के दावेदार।

थोड़ी देर में समुद्र का पानी भी सुबह का रंग पकड़कर चमकने लगा। हलकी-हलकी लहरें उसे फिर किनारे की तरफ लाने लगीं। गिरजे का क्रास कुछ क्षण लहू के रंग में रंगा रहकर अब पीला पड़ रहा था। रोज जैसी एक सुबह की शुरुआत उसके लिए भी हो गई थी।

कल सुबह भी इसी तरह एक शुरुआत हुई थी। परसों भी। हर सुबह एक नयी शुरुआत की छटपटाहट लिए आती थी। नये सिरे से मन अपने को अपने मनचाहे रूप में ढालने की कल्पना करने लगता था। उस कल्पना को सार्थक करने के लिए नये सिरे से संघर्ष आरम्भ होता था, हालांकि शाम होने तक फिर वही थकान शेष रह जाती थी। अगली सुबह आने तक की ऊब और उदासी, फिर उस उदासी को छा लेने वाली नींद, लेकिन नींद की दरारों में से झांकती एक आशा कि शायद आने वाली सुबह आज से कुछ दूसरी तरह की होगी और अगर आज-जैसी ही होगी, तो अब उससे लड़ने की और कोशिश नहीं की जाएगी। टूटते सपनों की नींद की पहरेदारी में रात काटकर फिर सुबह, फिर उसी तरह किनारे की तरफ लौटने का प्रयत्न, फिर वही गिरजे की पहरेदारी, फिर वही बिना पंखे धूप-रंगे आकाश में उड़ने की मजबूरी।

खिड़की से हटकर वह स्टोव के पास आ गया। चाय का सामान उसी तरह बिखरा था, जैसे श्यामा कल छोड़ गई थी। कमरे के अन्दर जैसे कल की शाम उसी तरह रुकी थी। धूप में चमकते और कांपते जर्रों के बावजूद। इस बीच एक रात आकर चली गई थी, लेकिन उस शाम को अपने में समेटकर नहीं ले जा सकी थी। आंखें नींद के खुमार से भारी थीं। रात-भर नींद आई ही नहीं थी। रात जैसे आकर भी कमरे की दहलीज नहीं लांघ सकी थी और अब सुबह खिड़की के बाहर समुद्रतट के उस तरफ रुकी थी।

स्टोव के पास से हटकर वह कुर्सी पर आ गया। सामने फिर वही दरार थी। कल की रुकी शाम की एक लकीर। तिपाई पर एक प्याली औंधी पड़ी थी जिससे बह आई चाय की तलछट सूखकर वहीं जम गई थी। श्यामा ने जब उसे झटककर अपने को उससे अलग किया था, तभी उसका पांव टकरा जाने से वह प्याली औंधी हुई थी। वह एक क्षण था, अन्दर के सुलगते भाव ने एकाएक राख में बदल जाने का, जब उसे एक-साथ दोनों से घृणा हुई थी, अपने से भी और श्यामा से भी। उसके बाद उसने पाया था कि वह कुर्सी पर बैठा है और अपना चेहरा उसने दोनों हाथों से ढांप रखा

मैं तुम्हारे साथ नहीं थी। काटने को बच्चे भी काट लेते हैं कभी। जानवर भी काट लेते हैं।'

श्यामा की आंखों को झेलना मुश्किल हो रहा था उसके लिए। खिड़की का पर्दा खींचने के बहाने वह उठने को हुआ, तो श्यामा ने उसे रोक दिया, 'बैठे रहो। मुझे जाने से पहले एक बात कहनी है तुमसे।' उसकी कनपटियां धड़क रही थीं। वह घुटने जोड़े उन पर हाथ रखे बैठा रहा।

श्यामा की कुहनियां घुटनों पर थीं और चेहरा उलटी हथेलियों पर। वह उसी तरह हवा में देखती बात करती रही, 'मैंने तुम्हें बताया था, मैंने उन दिनों तुम्हें पत्र लिखा था अपने यहां आने के लिए। तब मेरे मन में कोई रुकावट नहीं थी। उस दिन तुम आए होते, तो सम्भव था कुछ भी हो जाता। मैंने अपने को बचाने का कुछ भी प्रयत्न न किया होता। वैसे यह बात भी गलत है शायद। कहना चाहिए कि मैंने तुम्हें बुलाया ही इसीलिए था कि मैं तुम्हारे साथ इस स्थिति को मन में स्वीकार कर चुकी थी। जो संस्कार मन को रोकता था, वह तब तक टूट चुका था। इस बार भी वहां से चली थी, तो शायद यही सबसे बड़ा प्रलोभन मन में था कि तुम यहां हो। सब छोड़-छाड़कर यहां आ रहने की सोचना, लगता है, इसके मूल में यही प्रलोभन था। तुमने एक बार कहा था कि सम्बन्धों को दिए गए सब नाम केवल सुविधा के लिए हैं। वास्तविक सम्बन्ध इतने सूक्ष्म होते हैं और व्यक्ति-व्यक्ति के साथ इतने अलग कि उन्हें नाम दिए ही नहीं जा सकते। मैं तुम्हारे और अपने सम्बन्ध को बिना नाम दिए उसमें से सब-कुछ पा लेना चाहती थी। उस दिन फोन पर तुमसे मिलने की बात तय की थी, तब भी काफी हद तक यही सोचती थी। आज भी मिलने आई थी, तो निश्चय नहीं कर सकी थी कि तुम मुझे रोक लेना चाहोगे, तो मैं लौट जाने का आग्रह बनाए रख सकूंगी या नहीं। मन में एक दुविधा थी, पर वह और ही कारण से थी। विश्वास कर सको, तो सचमुच यहां से लौट जाने का निश्चय मैंने आज तुमसे मिलने के बाद किया है, परन्तु इसी समय नहीं, यह मत सोचना कि तुम्हारा इस समय का पागलपन इसका कारण है, क्योंकि ऐसा नहीं है। इससे अलग परिस्थिति में यह पागलपन मेरा भी हो सकता था।'

उसने कुछ कहना चाहा, पर श्यामा ने उसे अवसर नहीं दिया, 'तुम्हारे जीवन की परिस्थिति आज बदल गई है, यह भी इसका कारण नहीं। उस परिस्थिति को अस्वीकार करने का अधिकार किसी को भी है। मुझे भी था, परन्तु मैंने देव के रहते उस अधिकार का उपयोग नहीं किया। इसका अर्थ है, नहीं करना चाहा। देव ने जीवन-भर कड़वी बात मुझसे

आ जाता है, जब···।'

श्यामा ने अपने बालों को सहेजकर एक बार आंखों को भी रूमाल से छू लिया, 'मुझे दुःख नहीं है। दुख होता यदि मेरा भी इसमें सहयोग होता, जैसा कि उस बार था। उस बार मैंने ऊपर से बुरा माना था, पर अन्दर से मेरी भूख तुमसे कम नहीं थी, पर आज यह मेरे लिए केवल एक दुर्घटना थी, जिसमें मैं थोड़ी चोट खा गई हूं, बस। इस समय मुझे दुख है, तो और ही बात का है। वह तुम्हारे या अपने लिए नहीं, एक और ही व्यक्ति के लिए है। आज तक सोचती थी धोखा मेरे साथ हुआ है, पर आज सोच रही हूं वास्तविक धोखा जिसके साथ हुआ, वह अपनी खामोश आंखों से मुझे देखने के लिए इस समय जीवित ही नहीं है।'

एक लम्बा विराम जिसमें दोनों की आंखें काफी देर झुकी रहीं। जब उसने आंखें उठाईं, श्यामा उठकर चलने से पहले उसके अपनी ओर देखने की प्रतीक्षा में थी, 'मैं चल रही हूं अब। यह मत सोचना कि इस घटना के कारण तुम्हारा तिरस्कार करके या तुम्हारे साथ जितना सम्बन्ध था, उसे तोड़कर जा रही हूं, पर इस समय तुम मुझे छोड़ने चलो, यह मुझे अच्छा नहीं लगेगा। एहसान मानूंगी अगर तुम मुझे यहां से अकेली चले जाने दो।'

वह बिना कुछ कहे उसके साथ दरवाजे तक आ गया। दरवाजे के पास श्यामा ने फिर एक बार उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया, 'हो सकता है, फिर भी कभी तुम्हें आने के लिए लिखूं, पर आओ, तो कोई ऐसी-वैसी बात सोचकर मत आना।'

औंधी प्याली और चाय की सूखी तलछट। कुमार ने प्याली को सीधा करके तिपाई को अच्छी तरह कपड़े से पोंछ दिया, फिर जाकर प्यालियों को धोया और स्टोव जलाकर चाय का पानी रख दिया। खिड़की के पास आया, तो देखा किनारे का बहुत-सा भाग पानी के अन्दर चला गया है। गिरजाघर के क्रास ने भी तब तक रोज की तरह गम्भीरता का लबादा ओढ़ लिया था। 'हुंह!' सूखा अस्पष्ट-सा स्वर उसके मुंह से निकला और वह स्टोव के पास लौटकर चाय बनाने लगा. पर प्यालियों में पत्ती डालते हुए उसे अपना हाथ कांपता लगा। उसी तरह जैसे कल श्यामा का हाथ कांप रहा था।